सामाजिक विज्ञान

इतिहास की दुनिया

कक्षा 9 के लिए इतिहास की पाठ्यपुस्तक

(राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार द्वारा विकसित)
बिहार स्टेट टेक्स्टबुक पब्लिशिंग कॉरपोरेशन लिमिटेड

प्राक्कथन

शिक्षा विभाग, बिहार सरकार के निर्ण्यानुसार अप्रैल, 2009 से राज्य के कक्षा–IX हेतु नए पाठ्यक्रम को लागू किया गया है प्रथम चरण में शैक्षिक सत्र 2009 के लिए वर्ग IX की सभी भाषायी एवं गैर भाषायी पुस्तकों का पाठ्यक्रम प्रारम्भ करने का निर्णय लिया गया । इस नए पाठ्यक्रम के आलोक में एस.सी.ई.आर.टी. बिहार, पटना द्वारा सभी भाषायी एवं गैर भाषायी पुस्तक (वाणिज्य एंव कला विषयक) बिहार राज्य पाठ्य–पुस्तक प्रकाशन निगम द्वारा आवरण चित्रण कर मुक्रित किया जा रहा है।

बिहार राज्य में विद्यालयी शिक्षा के गुणवत्तापूर्ण शिक्षा के लिए माननीय मुख्यमंत्री, श्री नीतीश कुमार, शिक्षा मंत्री, श्री डा. चंद्रशेखर तथा शिक्षा विभाग के अपर मुख्य सचिव श्री के. के. पाठक के मार्ग निर्देशन के प्रति हम हृदय से कृतज्ञ हैं ।

एस. सी. ई. आर. टी. बिहार, पटना के निदेशक के हम आभारी हैं, जिन्होंने अपना सहयोग प्रदान किया ।

बिहार राज्य पाठ्य–पुस्तक प्रकाशन निगम छात्रों, अभिभावकों, शिक्षकों, शिक्षाविदों की टिप्पणियों एवं सुझावों का सदैव स्वागत करेगा जिससे बिहार राज्य को देश के शिक्षा जगत में उच्चतम स्थान दिलाने में हमारा प्रयास सहायक सिद्ध हो सके।

श्री सन्नी सिन्हा, आई.आर.एस.एस

प्रबन्ध निदेशक

बिहार राज्य पाठ्य-पुस्तक प्रकाशन निगम लि०, पटना।

दिशा बोध

- श्री सज्जन आर. भा.प्र.से. — निदेशक राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, पटना
- श्री रघुवंश कुमार — निदेशक, (शैक्षणिक) बिहार विद्यालय परीक्षा समिति (उच्च माध्यमिक प्रभाग) पटना
- डा. सय्यद अब्दूल मोईन — विभागाध्यक्ष, अध्यापक शिक्षा, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार
- श्री रामतवक्या तिवारी — विभागाध्यक्ष, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान, राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार

पाठ्यपुस्तक विकास समिति

- डॉ0 इम्तियाज अहमद — निदेशक, खुदा बख्श ओरियएन्टल पब्लिक लाइब्रेरी, पटना
- डॉ0 माधुरी द्विवेदी — शिक्षिका, पटना कॉलेजियट स्कूल, पटना
- पंकज कुमार — शिक्षक, राजकीयकृत उच्च विद्यालय वीर ओइयारा, पटना
- मो0 शकील राजा — शिक्षक, टी० के० घोष एकेडमी, राजकीय उच्च विद्यालय, पटना

सहयोग

- डॉ0 सुनीता शर्मा — बी० डी० ईवनिंग कॉलेज, पटना

अकादमिक सहयोग

श्री ज्ञानदेव मणि त्रिपाठी — सदस्य, पाठ्यक्रम एवं पाठ्यपुस्तक विकास समिति

आमुख

यह पुस्तक राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 एवं बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2006 के आलोक में विकसित नवीन पाठ्यक्रम (2007) के आधार पर तैयार की गयी है। नवीन पाठ्यक्रम (New Syllabus) के आलोक में तैयार यह पुस्तक नवम् वर्ग हेतु वर्ष 2009 में लागू होने जा रही है।

इस पुस्तक के विकासक्रम में इस बात का ध्यान दिया गया है कि शिक्षार्थियों को स्कूली जीवन के बाहर आस-पास से अनुभवों के साथ जोड़ते हुए विषय-सामग्री से परिचित कराया जाए, क्योंकि राष्ट्रीय पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2005 एवं बिहार पाठ्यचर्या की रूपरेखा 2006 का मूल उद्देश्य भी यही है कि बच्चों के स्कूली जीवन और स्कूल के बाहर के जीवन में अंतराल नहीं होना चाहिए। पुस्तक को विकसित करते समय इस बात पर अधिक बल दिया गया है कि पुस्तक को परीक्षा का एकमात्र आधार बनाने की प्रवृत्ति से दूर ले जाया जाए। बच्चों में सर्जनात्मक पहल को विकसित करने के लिए यह अति आवश्यक है कि सीखने और सिखाने की प्रक्रिया में भाग लेने हेतु बच्चों को अधिक अवसर उपलब्ध कराये जाएँ। पुस्तक विकासक्रम में इन बातों पर विशेष रूप से ध्यान दिया गया है।

नवम् वर्ग में शिक्षार्थी के मस्तिष्क का इतना विकास तो हो ही जाता है कि वह इतिहास की दुनिया के सैर करने के क्रम में इतिहास के संदर्भ में महत्त्वपूर्ण पहलुओं को समझने के प्रयास में सक्षम बन सके। इस स्तर के बच्चों में समझ को परखते हुए कोशिश की गई है कि बच्चों को इतिहास को समझने में मदद मिल सके। साथ ही इस पुस्तक के विकासक्रम में यह कोशिश भी की गई है कि छात्र को इतिहास के कुछ बुनियादी प्रश्नों को समझने एवं व्याख्या करने में सक्षम हो सके। इस पुस्तक की एक महत्त्वपूर्ण खासियत यह है कि इसमें एतिहासिक अवयवों को बड़े ही सटीक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् सर्वप्रथम इस पुस्तक के विकास में शामिल विद्वत्जनों के प्रति आभार प्रकट करती है, जिनके सहयोग से यह महत्त्वपूर्ण

कार्य सम्पन्न हुआ। साथ ही इस पुस्तक के विकास के लिए बनाई गई पाठ्य विकास समिति के सदस्य **डॉ0 इम्तियाज अहमद**, निदेशक खुदा बख्श ओरिएन्टल पब्लिक लाइब्रेरी, पटना, **डॉ0 सुनीता शर्मा**, बी० डी० ईवनिंग कॉलेज, पटना, **डॉ0 माधुरी द्विवेदी**, शिक्षिका, पटना कॉलेजियट स्कूल, पटना, **पंकज कुमार**, शिक्षक, राजकीयकृत उच्च विद्यालय वीर ओइयारा, पटना, **मो0 शकील राजा**, शिक्षक, टी० के० घोष एकेडमी, राजकीय उच्च विद्यालय, पटना के प्रति कृतज्ञता व्यक्त करती है। राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् के प्रति हम विशेष आभार व्यक्त करते हैं क्योंकि इस पुस्तक को तैयार करने के क्रम में राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् ने नवम् वर्ग के लिए निर्धारित पुस्तक के कई अंशों एवं महत्त्वपूर्ण बिन्दुओं का सहारा लिया गया है। हम श्री राम तवक्या तिवारी, विभागाध्यक्ष, मानविकी एवं सामाजिक विज्ञान एवं उनके सहयोगियों के प्रति भी आभार व्यक्त करते हैं जिनके प्रयत्न से तत्परतापूर्वक निर्धारित कार्य सम्पन्न हुआ।

इस पुस्तक के विकासकार्य को अत्यल्प समय तथा शीघ्रता में तैयार किया गया है। संभव है कहीं-कहीं कुछ त्रुटियाँ रह गयी हों, जिन्हें विद्वत्जनों के सुझाव से अगले संस्करण में सुधारने का प्रयास किया जाएगा।

हम विशेष रूप से राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद् के प्रति आभार व्यक्त करते हैं जिनके मार्गदर्शन में इस महती कार्य को सफलता पूर्वक सम्पन्न कराया गया। हम संकाय के उन सभी पदाधिकारियों, कर्मचारियों को धन्यवाद देते हैं जिनकी एकनिष्ठ सक्रियता ने कार्य को सुगम बना दिया।

निदेशक (प्रभारी)

राज्य शिक्षा शोध एवं प्रशिक्षण परिषद्, बिहार,

पटना-800006

विषय-सूची

	अध्याय :	पृष्ठ संख्या :

इकाई-1

भौगोलिक खोजें

भौगोलिक खोजें :

विश्व इतिहास की युगांतकारी घटनाओं में समुद्री यात्राओं एवं भौगोलिक खोजों का महत्वपूर्ण स्थान रहा है। आधुनिक युग के आरम्भ होने में जिन घटनाओं का निर्णायक योगदान रहा है, उनमें यह खोजें भी शामिल हैं। इनकी पृष्ठभूमि उस वैज्ञानिक प्रगति और आर्थिक विकास, विशेषकर व्यापारिक परिवर्त्तनों के द्वारा रची गई जो मध्ययुग के अंतिम चरण से ही आरम्भ हो गई थीं। इस कार्य में यूरोप के देशों ने अग्रणी भूमिका निभाई और यही कारण था कि आधुनिक युग में यूरोप का वर्चस्व समस्त विश्व में स्थापित हो गया । यह बात और है कि भौगोलिक खोजों का प्रारम्भ करने वाले देश स्पेन एवं पुर्त्तगाल इस प्रतिस्पर्द्धा में धीरे-धीरे पिछड़ते चले गए और नये देशों जैसे- इंग्लैंड, हॉलैंड, फ्रांस तत्पश्चात् जर्मनी को इस दिशा में अधिक सफलता मिली।

हम जानते हैं कि विश्व की प्रारम्भिक सभ्यताओं के काल से ही व्यापार एवं वाणिज्य परस्पर सम्पर्क का कारण रहा है। यह व्यापार मुख्यत: एक निश्चित मार्ग के माध्यम से होता था। प्राचीन एवं मध्यकाल में भी यूरोप एवं एशिया के मध्य प्राय: इन्हीं मार्गों का प्रयोग किया जाता था। परन्तु विश्व के कई ऐसे क्षेत्र थे, जिनमें जन-जीवन तो विद्यमान था लेकिन शेष विश्व से उनका जुड़ाव नहीं था, जैसे- अमेरिका, अफ्रीका, आस्ट्रेलिया तथा एशिया के अन्य हिस्से आदि। यद्यपि 13 वीं शताब्दी में भारत होकर चीन तक की यात्रा विवरणों ने यूरोपियनों को दक्षिण-पूर्वी एशियाई समृद्धि का एहसास तो कराया था परन्तु इसका विशेष प्रभाव नहीं पड़ा । कालांतर में व्यापक स्तर पर हुए भौगोलिक खोजों तथा उससे प्राप्त उपलब्धियों ने यूरोप में आधुनिक युग का मार्ग प्रशस्त किया।

> **पुर्त्तगाली यात्री मार्कोपोलो ने विजयनगर साम्राज्य की समृद्धि एवं चीन के शासक कुबलय खाँ के दरबार के वैभव का वर्णन अपने यात्रा वृत्तान्त में किया है।**

मध्यकालीन यूरोपीय इतिहास का हम यदि अध्ययन करेंगे तो पायेंगे कि यह काल सामंती प्रवृतियों का काल था। इस काल में न तो व्यापार-वाणिज्य गतिशील था और न ही धर्म का स्वरूप उदार एवं मानवीय था। पृथ्वी के बारे में ज्ञान अत्यल्प एवं अंधविश्वास से युक्त था। सीमित भौगोलिक ज्ञान के कारण सामुद्रिक व्यापार भी सीमित था। मध्ययुगीन लोगों को विश्वास था कि पृथ्वी चपटी है एवं समुद्र में अधिकतम दूरी पर जाने पर पृथ्वी के किनारों से गिरकर अनन्त में विलीन हो जाने का भय बना रहता था। समुद्र यात्रा अत्यधिक कष्टपूर्ण एवं असाध्य थी। जहाज छोटे और असुरक्षित थे तथा गति एवं सुरक्षा के लिए हवा पर निर्भर थे। कम्पास या कुतुबनुमा जैसे दिशासूचक यंत्र का ज्ञान अभी नहीं हुआ था। अत: दिग्भ्रमित होकर समुद्र में भटक जाने का भय भी बना रहता था। समुद्री यात्राओं के लिए राज्य की ओर से किसी प्रकार की सहायता नहीं दी जाती थी। इस विषम परिस्थिति में नाविकों एवं व्यापारियों द्वारा अटलांटिक (अंधमहासागर) जैसे महासागर की यात्रा करना अत्यंत दुष्कर था।

भौगोलिक खोजों की पृष्ठभूमि :

इस बीच यूरोप में कुछ ऐसी घटनाएँ घट रही थीं, जिसके प्रभावस्वरूप यूरोप मध्ययुगीन मानसिकता से निकलने को उद्यत हुआ। 11वीं-12वीं शताब्दी में जेरूशलम (आधुनिक इजरायल में अवस्थित) पर अधिकार के मुद्दे को लेकर हुए धर्मयुद्ध में जब यूरोपीय सामंत मध्यएशिया की नवीन शक्ति अरबों से पराजित हुए तो सामंती गौरव के मिथ्याभिमान से ग्रसित यूरोपीय दंभ टूटने लगा। परन्तु इसके कुछ सकारात्मक परिणाम भी सामने आये। धर्मयुद्ध के दौरान ही यूरोपियनों को यह महसूस होने लगा था कि दुनिया के हर पहलू को समझा जाए। इन घटनाओं ने यूरोप में पुनर्जागरण की पृष्ठभूमि भी तैयार की।

मध्ययुग में अरबों और तत्पश्चात् तुर्कों ने विशाल अंतर्राष्ट्रीय साम्राज्यों का निर्माण किया। इधर 15वीं शताब्दी के पाँच दशक पूर्व तक यूरोप और एशिया के मध्य व्यापार कुस्तनतुनिया के मार्ग से होता था। परन्तु 1453 ई० में कुस्तनतुनिया पर तुर्की आधिपत्य से यूरोपीय व्यापारियों के लिए इस मार्ग से व्यापार करना निरापद नहीं रहा। क्योंकि तुर्कों ने इस मार्ग से व्यापार के बदले भारी कर वसूलना शुरू कर दिया था, जिसका हल ढूँढ़ना यूरोपीयनों के लिए आवश्यक था।

इस काल में हुए नये-नये आविष्कारों ने समुद्री यात्रा एवं नौसेना के विकास को आसान कर दिया। यूरोपवासियों ने कम्पास का ज्ञान अरबों से सीखा। इटली, स्पेन एवं पुर्त्तगाल के समुद्रतटीय इलाकों में नाव निर्माण कला में परम्परागत पद्धति की जगह खाँचा पद्धति विकसित हुई, जिससे बड़े एवं मजबूत जहाज बनाए जाने लगे। दूरबीन का आविष्कार भी हो चुका था जो

सामुद्रिक अभियानों में काफी सहायक था। अब मानचित्र में काफी सुधार हो चुका था। इस संदर्भ में ऐस्ट्रोलैब (अक्षांश जानने का उपकरण) भी महत्वपूर्ण था। पुर्त्तगालियों ने एक नई किस्म के हल्के और तेज चाल से चलने वाले जहाज **कैरावल** बनाए।

दिशासूचक यंत्र का चित्र

इन नये उपकरणों एवं साहस के बल पर यूरोपीय नाविकों ने अटलांटिक एवं भूमध्य सागर में अपने जहाज उतारे। इसी क्रम में 1488 ई० में पुर्त्तगाली व्यापारी **बार्थोलोमियो डियाज** अफ्रीका के पश्चिमी तट होते हुए दक्षिण अफ्रीका के दक्षिणतम बिन्दु **उत्तमआशा अंतरीप** (Cape of good hope) तक पहुँच गया। 1492 ई० में क्रिस्टोफर कोलम्बस द्वारा अमेरिका की खोज की गई। आगे 1498 ई० में पुर्त्तगाल का एक

तत्कालीन नाव का चित्र

(वास्कोडिगामा)

साहसी नाविक वास्कोडिगामा उत्तमआशा अंतरिप होते हुए भारत के मालाबार तट (केरल के कालीकट) तक पहुँच गया, जहाँ स्थानीय शासक 'जमोरीन' द्वारा उसका स्वागत किया गया। ज्ञातव्य है कि वास्कोडिगामा की सफलता के पीछे कुछ नवीन संसाधनों का भी योगदान था। भारत के एक व्यापारी **अब्दुल मजीद** की भेंट वास्कोडिगामा से दक्षिण अफ्रीका में हुई तथा इसी के सहयोग से उसे भारत आने का सीधा मार्ग मिल गया। इससे यूरोपीयनों के साहस में वृद्धि हुई। वास्कोडिगामा द्वारा भारत से लाए गए वस्तुओं को 26 गुणा मुनाफे पर यूरोपीय बाजारों में बेचा गया। 'अमेरिका' अर्थात् नई दुनिया की खोज यूरोपीयनों की एक नई उपलब्धि थी, जिसे 1492 में ही कोलम्बस ने प्राप्त किया। यद्यपि कोलम्बस ने अमेरिका को भारतीय उपमहाद्वीप का हिस्सा समझा और यहाँ के निवासियों को **रेड इंडियन** कहा। बाद में स्पेन के नाविक **अमेरिगु वेस्पुची** ने नई दुनिया को विस्तार से ढूँढ़ा और इसे एक महाद्वीप बताया। इसी के नाम पर इस क्षेत्र का नाम अमेरिका पड़ा। 1519 ई० में मैग्लन ने पूरी दुनिया का चक्कर जहाज से लगाया और यह धारणा पुष्ट हो गई कि सभी समुद्र एक दूसरे से जुड़े हैं। आगे कैप्टन कुक ने ऑस्ट्रेलिया की भी खोज की, साथ-साथ न्यूजीलैंड के द्वीपों का भी पता लगाया। सर जॉन और सेवास्टिन कैबोट ने न्यूफाउंडलैंड के द्वीपों का पता लगया। । भौगोलिक खोजों को प्रोत्साहन देने में विभिन्न यूरोपीय देशों के शासकों ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई जिसमें पुर्त्तगाल के राजकुमार **हेनरी-द-नेवीगेटर** तथा स्पेन की महारानी **ईसाबेला** प्रमुख थी। इस प्रकार 16 वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध तक लगभग समस्त दुनिया की जानकारी यूरोप को हो चुकी थी।

(कोलम्बस)

नई दुनिया : अमेरिकी महाद्वीप को यूरोपीयों द्वारा नई दुनिया कहा गया। क्योंकि कोलम्बस की यात्रा से पूर्व इसकी कोई जानकारी नहीं थी।

प्रमुख खोज यात्राएं
प्रशांत महासागर

भौगोलिक खोजों के परिणाम :

भौगोलिक खोजों के परिणाम काफी दूरगामी और महत्वपूर्ण साबित हुए। इस घटना ने पहली बार लोगों को संसार के एक वृहत्त भूखण्ड से परिचित कराया और विश्व के देश एक-दूसरे के सम्पर्क में आये। एशिया और यूरोप की विभिन्न सभ्यताओं का, जो पहले से विलग थी, परस्पर संपर्क स्थापित हुआ। नये देशों की खोजों के द्वारा न केवल नए उपनिवेशों के साथ व्यापार करने को प्रोत्साहन मिला वरन् उन्होंने वहाँ अपनी सभ्यता-संस्कृति, धर्म एवं साहित्य का प्रचार-प्रसार करने का भी प्रयास किया । परन्तु इसका नकारात्मक प्रभाव यूरोपीय उपनिवेशवाद के रूप में उभर कर सामने आया। अपनी विकसित एवं भौतिक आवश्यकताओं के निमित्त इन्होंने उन देशों का शोषण किया जो यूरोपीय देशों के उपनिवेश थे। भौगोलिक खोजों के परिणाम निम्नरूपेण स्पष्ट किये जा सकते हैं-

भौगोलिक खोजों के परिणाम :

- व्यापार-वाणिज्य पर प्रभाव
- औपनिवेशिक साम्राज्य का विकास
- वाणिज्यवाद का विकास
- ईसाई धर्म एवं पश्चिमी सभ्यता का प्रसार
- दास-व्यापार का विकास
- भ्रांतियों का अंत एवं भौगोलिक ज्ञान में वृद्धि।

(1) व्यापार वाणिज्य पर प्रभाव : नये देशों की खोज एवं नये व्यापारिक संपर्कों ने यूरोपीय व्यापार-वाणिज्य में क्रांतिकारी परिवर्त्तन लाये। उपनिवेशों के आर्थिक शोषण से यूरोपीय देश समृद्ध होने लगे। इस प्रगति ने यूरोपीय व्यापार को चरमोत्कर्ष पर पहुँचा दिया। फलस्वरूप मुद्रा व्यवस्था का विकास हुआ । हुंडी, ऋणपत्र आदि व्यापारिक साख का विकास हुआ। व्यापार अपने स्थानीय स्वरूप से विकसित हो कर वैश्विक रूप लेने लगा।

नये देशों की खोज के पूर्व व्यापार मुख्य रूप से भूमध्यसागर और बाल्टिक सागर तक ही सीमित था, परन्तु अब इसका स्थान अटलांटिक, हिंद तथा प्रशांत महासागरों ने लिया । फलत: पेरिस, लंदन, एम्सटरडम, एंटवर्प आदि शहर विश्वव्यापी व्यापार के प्रमुख केन्द्र बन गए और यूरोपीय व्यापार पर इटली का एकाधिकार जाता रहा। इसके बदले स्पेन, पुर्त्तगाल, हॉलैंड-इंग्लैंड तथा फ्रांस का प्रभाव बढ़ गया। कालांतर में अपने विशाल साम्राज्य को संभालने में स्पेन और पुर्त्तगाल इतने निमग्न हो गए कि इन्होंने अपना साम्राज्य ही खो दिया। यूरोपीय देशों द्वारा खोजे गए नये देशों से आयातित बहुमूल्य धातुओं विशेषकर अमेरिका से आयातित सोना तथा चांदी ने अर्थव्यवस्था के स्वरूप को ही बदल दिया। फलत: 80 वर्षों तक यूरोपीय अर्थव्यवस्था चांदी पर निर्भर रही। इससे मुद्रास्फीति की स्थिति उत्पन्न हो गई। बदले हुए आर्थिक स्वरूप में व्यापार की प्रधानता बनी और वर्ग संबंधों में परिवर्त्तन आने लगे। इसके फलस्वरूप समाज के सामंती वर्ग के बदले में व्यापारी वर्ग का प्रभाव बढ़ा।

(2) औपनिवेशिक साम्राज्यों का विकास : भौगोलिक खोजों के उपरांत उपनिवेशों की स्थापना के रूप में साम्राज्यवाद का विकास जारी रहा और यूरोपीय राष्ट्रों में तीव्र प्रतिस्पर्द्धा भी चलती रही। इसके फलस्वरूप व्यापार के माध्यम और स्वरूप में भी परिवर्त्तन आये। व्यक्तियों की जगह अब संगठित व्यापारिक कंपनियों ने व्यापार का संचालन आरम्भ किया और इसी उद्देश्य से विशेषाधिकार तथा अन्य सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए ये कंपनियाँ प्रयत्नशील हुईं। इंग्लैंड, हॉलैंड, स्वीडेन, डेनमार्क, फ्रांस आदि देशों में ऐसी कंपनियाँ स्थापित हुईं। इनमें से कुछ कम्पनियाँ व्यापारियों के द्वारा प्रायोजित थे और कुछ राज्य द्वारा। आगे अमेरिका, अफ्रीका, ऑस्ट्रेलिया तथा अन्य द्वीप समूहों में उपनिवेश एवं बस्तियाँ बसाई गईं। प्रारम्भ में पुर्त्तगाल और स्पेन उपनिवेश स्थापित करने में अग्रणी रहे परन्तु 16 वीं सदी के अंत तथा 17 वीं सदी के प्रारम्भ में फ्रांस भी शामिल हो गया।

भारत में यूरोपीय कंपनियों की स्थापना
- पुर्त्तगालियों का आगमन-1498
- अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी-1600
- डच-1602
- फ्रांसीसी-1664
- डेनिस-1616
- स्वीडिश-1731

(3) वाणिज्यवाद का विकास : नये देशों की खोज तथा व्यापार के वैश्विक विस्तार के फलस्वरूप आधुनिक पूँजीवाद का जन्म हुआ। इस आर्थिक व्यवस्था में बुलियन की महत्ता बढ़ी। सोने की महत्ता ने यूरोपीय देशों का ध्यान इस ओर आकृष्ट किया तथा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सोने एवं चांदी की लूट हुई; साथ-साथ इसका भंडारण भी किया जाने लगा। इन भंडारों की प्राप्ति में स्पेन अग्रणी था।

(4) ईसाई धर्म एवं पश्चिमी सभ्यता का प्रसार : जैसा कि पूर्व में उल्लिखित है कि भौगोलिक खोजों ने यूरोपीय देशों की सभ्यता, संस्कृति, धर्म एवं साहित्य का प्रचार-प्रसार किया। धर्मयुद्धों की असफलता के कारण ईसाई धर्म का प्रचार-प्रसार जो धीमा पड़ गया था, नये भौगोलिक खोजों ने इसमें प्राण डाल दिये । ईसाई धर्म प्रचारों ने अफ्रीका, एशिया तथा अमेरिका के दुर्गम स्थलों में जाकर अपना धर्म प्रचार किया। परन्तु इसका नकारात्मक प्रभाव यह पड़ा कि इन क्षेत्रों में धन का लालच देकर एवं जबरन धर्मान्तरण एवं सांस्कृतिक अतिक्रमण किया गया और इसका विरोध भी हुआ। दूसरी तरफ धर्म के व्यापक प्रसार ने चर्च की प्रभुसत्ता को कम किया। भौगोलिक खोजों के कारण हुई ज्ञान में वृद्धि से तत्कालीन धर्म के विषय में कई प्रश्न उठ खड़े हुए। धर्म को भी तर्क की कसौटी पर कसा जाने लगा। जिसने धर्म सुधार आन्दोलन की पृष्ठभूमि का निर्माण किया ।

(5) दास व्यापार का विकास : भौगोलिक खोजों के परिणामस्वरूप विकसित हुए व्यापार-वाणिज्य में 'मानव श्रम' की महत्ता ने दास व्यापार को प्रोत्साहित किया। नये अन्वेषित क्षेत्रों

अमेरिका, अफ्रीका तथा ऑस्ट्रेलिया के मूल निवासियों को पकड़कर उन्हें यूरोप के बाजारों में बेचा जाना शुरू हुआ। आरम्भ में गुलामों का व्यापार व्यक्तिगत स्तर पर था किन्तु 16 वीं शताब्दी के अंत में इसने बकायदा व्यापार का रूप धारण कर लिया। इन गुलामों से जंगल को काटने, खेती करने, सड़क बनाने, जहाजों में ईंधन फोंकने आदि कठिन कार्य करवाये जाते थे तथा इनपर अमानवीय बर्बर अत्याचार किये जाते थे। इस प्रकार भौगोलिक खोजों का यह नकारात्मक परिणाम था कि इसने तथाकथित सभ्य एवं विकसित लोगों द्वारा अविकसित,भोला-भाला एवं कमजोर लोगों का शोषण किया।

(6) भ्रांतियों का अंत एवं भौगोलिक ज्ञान में वृद्धि : भौगोलिक खोजों ने भौगोलिक ज्ञान के संदर्भ में व्याप्त भ्रांतियों को तोड़ने का कार्य किया। इससे चर्च द्वारा प्रसारित अवधारणाओं पर अंगुली उठने लगी। कालान्तर में यह यूरोप में धर्म सुधार आंदोलन का कारण बना। नए गोलार्द्ध के आविष्कार से यूरोप की क्षुद्रता और दुनिया की महत्ता की अभूतपूर्व जानकारी ने मनुष्य को नए-नए आविष्कारों के रास्ते पर खड़ा कर दिया। इसका संदेश स्पेनिश सिक्के **'सामने और भी है'** से स्पष्ट होता है।

बढ़े हुए सामुद्रिक गतिविधियों ने समुद्री यात्राओं में उपयोगी विभिन्न उपकरणों यथा-नक्शे, कम्पास, नक्षत्र प्रणाली आदि के विकसित होने का अवसर प्रदान किया। इससे संबंधित विद्वानों एवं पेशेवर वैज्ञानिकों के वर्ग का जन्म हुआ। कालांतर में इसी वर्ग ने 'पुनर्जागरण' में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

(7) अन्य परिणाम : भौगोलिक खोजों से विभिन्न प्रकार के नवीन फसलों का अंतर महाद्वीपीय आदान-प्रदान हुआ। जैसे- यूरोप में कहवा, चाय, गन्ना, मक्का, आलू, तम्बाकू, नील आदि नवीन वस्तुओं का प्रवेश हुआ तथा यूरोप के माध्यम से चाय, कॉफी, तम्बाकू, आलू का भारत जैसे देशों में आगमन हुआ। भारतीय फसल आम, गन्ना आदि दूसरे क्षेत्रों में गये।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भौगोलिक खोजों ने विश्व की एक नई रूपरेखा सामने लायी। विचारों में परिवर्त्तन आये तथा वैज्ञानिक विचारों को मान्याताएँ मिली। धार्मिक अंधविश्वास टूटने लगे। दूसरी तरफ नये क्षेत्रों के अन्वेषणों तथा नवीन मार्गों के खोज के फलस्वरूप पूँजीवाद, वाणिज्य और साम्राज्यवाद का विकास हुआ । इसने दुनिया का यूरोपीयकरण कर दिया।

अन्य परिणाम :

- **यूरोप विशेषकर इटली में नये नगरों का उद्‌भव**
- **भूमध्यसागर के महत्त्व में वृद्धि**
- **पूँजीवाद, वाणिज्यवाद और साम्राज्यवाद का विकास**
- **नौसैनिक क्रियाकलापों में वृद्धि**

अभ्यास :

निर्देश : नीचे दिये गये प्रश्न में चार संकेत चिह्न हैं। जिनमें एक सही या सबसे उपयुक्त है। प्रश्नों का उत्तर देने के लिए प्रश्न संख्या के सामने वह संकेत चिह्न (क, ख, ग, घ) लिखें जो सही अथवा सबसे उपयुक्त हो।

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. वास्कोडिगामा कहाँ का यात्री था?

(क) स्पेन (ख) पुर्त्तगाल

(ग) इंग्लैंड (घ) अमेरिका

2. यूरोप वासियों ने दिशासूचक यंत्र का प्रयोग किनसे सीखा?

(क) भारत से (ख) रोम से

(ग) अरबों से (घ) चीन से

3. उत्तमआशा अंतरीप (Cape of good hope) की खोज किसने की?

(क) कोलम्बस (ख) वास्कोडिगामा

(ग) मैग्लेन (घ) डियाज बार्थोलोमियो

4. अमेरिका की खोज किस वर्ष की गई ?

(क) 1453 (ख) 1492

(ग) 1498 (घ) 1519

5. कुस्तुनतुनिया का पतन किस वर्ष की गई ?

(क) 1420 (ख) 1453

(ग) 1510 (घ) 1498

6. विश्व का चक्कर किस यात्री ने सर्वप्रथम लगाया ?

(क) मैग्लेन (ख) कैप्टन कुक

(ग) वास्कोडिगामा (घ) मार्कोपोलो

II. नीचे दिये गए कथनों में जो सही हो उनके सामने सही (✓) तथा जो गलत हों उनके सामने गलत (X) का चिह्न लगाएँ।

1. भारत के मूल निवासियों को रेड इंडियन कहा जाता है।
2. उत्तमाशा अंतरीप की खोज ने भारत तक पहुँचने का मार्ग प्रशस्त किया।
3. भारत अटलांटिक महासागर के पूर्वी तट पर स्थित है।

4. मार्कोपोलो ने भारत की खोज की।
5. जेरूशलम वर्त्तमान 'इजरायल' में है।
6. लिस्बन दास-व्यापार का बहुत बड़ा केन्द्र था।
7. अमेरिगु ने नई दुनिया को विस्तार से खोजा।

III. एक वाक्य में निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दें।

1. भारत आने में किस भारतीय व्यापारी ने वास्कोडिगामा की मदद की ?
2. न्यूफाउन्डलैंड का पता किसने लगाया ?
3. यूरोपीयों द्वारा निर्मित तेज चलने वाले जहाज को क्या कहा जाता था?
4. दक्षिण अफ्रिका का दक्षिणतम बिंदु कौन सा स्थल है?
5. 11वीं-12वीं शताब्दी में ईसाई एवं मुसलमानों के बीच धर्मयुद्ध क्यों हुआ था?
6. 1453 में कुस्तुनतुनिया पर किसने आधिपत्य जमाया ?
7. पुर्त्तगाल एवं स्पेन किस महासागर के पास अवस्थित हैं ?

IV. लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्नों का उत्तर कम से कम 30 एवं अधिकतम 50 शब्दों में दें।

1. यूरोप में मध्यकाल को अंधकार का युग क्यों कहा जाता है?
2. भौगोलिक खोजों में वैज्ञानिक उपकरणों का क्या योगदान था?
3. भौगोलिक खोजों ने व्यापार-वाणिज्य पर किस प्रकार प्रभाव डाले?
4. भौगोलिक खोजों ने किस प्रकार भ्रांतियों को तोड़ा ?
5. भौगोलिक खोजों ने किस प्रकार विश्व के मानचित्र में परिवर्तन लाया?

V. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न का उत्तर अधिकतम 200 शब्दों में दें।

1. भौगोलिक खोजों का क्या तात्पर्य है? इसने किस प्रकार विश्व की दूरियाँ घटाई?
2. भौगोलिक खोजों के कारणों की व्याख्या करें।
3. नये अन्वेषित भूभागों को विश्व के मानचित्र पर अंकित करें। और यह बतावें कि भौगोलिक खोजों से पूर्व आप यदि यूरोप में होते तो भारत से किस-प्रकार व्यापार करते।
4. अंधकार युग से क्या समझते हैं? अंधकार युग से बाहर आने में भौगोलिक खोजों ने किस प्रकार मदद की?
5. भौगोलिक खोजों के परिणामों का वर्णन करें। इसने विश्व पर क्या प्रभाव डाला?

इकाई-2

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम

विश्व इतिहास में आधुनिक काल का प्रारंभ जिन घटनाओं के साथ जोड़ा जाता है उनमें यूरोपीय देशों द्वारा 15 वीं शताब्दी में नए समुद्री मार्गों की खोज भी शामिल है। इसका उद्देश्य नए व्यापारिक मार्गों को विकसित करना था ताकि यूरोपीय देशों की अर्थव्यवस्था, व्यापार और वाणिज्य के माध्यम से समृद्ध बनाई जा सके। इसी क्रम में 1492 में कोलम्बस ने अमेरिकी महाद्वीप की खोज की। पुन: अमेरिगो वेस्पुची ने इस वृहद भूखंड के बारे में विस्तृत जानकारी दी। धीरे-धीरे यूरोपीय देशों ने इस क्षेत्र में अपने उपनिवेश भी बसा लिए। उत्तरी अमेरिका में मुख्य रूप से फ्रांस और इंग्लैण्ड ने अपना वर्चस्व स्थापित कर दिया।

लगभग उसी समय यूरोप में नए राजनैतिक विचारों का प्रतिपादन भी हो रहा था और व्यक्ति की स्वतंत्रता, निरंकुश सत्ता का विरोध, समानता और बंधुत्व जैसे विचार लोगों के बीच विशेष कर प्रबुद्ध वर्ग के बीच लोकप्रिय होते जा रहे थे। इंग्लैण्ड से अमेरिकी उपनिवेशों की भौगोलिक दूरी और वहाँ के निवासियों की वैचारिक भिन्नता ने धीरे-धीरे एक ऐसी स्थिति उत्पन्न कर दी जहाँ वैचारिक स्तर पर इंग्लैण्ड और उसके उपनिवेश वस्तुत: दो अगल-अलग स्तरों पर आ गए। उस समय की बदलती हुई आर्थिक व्यवस्था ने भी इन दोनों के बीच मतभेदों को बढ़ाया। धीरे-धीरे उपनिवेशवासी इंग्लैण्ड के वर्चस्व से मुक्त होने के लिए अग्रसर हुए। इसी का परिणाम अमेरिकी स्वंत्रता संग्राम के रूप में सामने आया।

कारण :

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम विश्व इतिहास की एक महत्वपूर्ण घटना है जिसके निम्नलिखित कारण थे:-

1. उपनिवेशों में राजनीतिक स्वायत्तता का अभाव :

अमेरिकी उपनिवेशों में अधिकांश अंग्रेज लोग थे जिन्होंने इंग्लैण्ड की संसदीय व्यवस्था एवं विधि-विधान को देखा था। अत: वे अपने उपनिवेश में भी उसी तरह की प्रजातांत्रिक व्यवस्था

चाहते थे जबकि ब्रिटिश शासक इसके खिलाफ थे। उपनिवेशों के गवर्नर इंग्लैण्ड के राजा द्वारा मनोनीत किए जाते थे जिन्हें विशेषाधिकार भी प्राप्त थे और वे उपनिवेशवासियों के प्रति उत्तरदायी नहीं थे। फलतः संघर्ष की स्थिति बनी रहती थी। उपनिवेशवासियों को शासन के योग्य नहीं माना जाता था। जिसके कारण उनमें भारी असंतोष था।

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के कारण :

- उपनिवेशों में राजनीतिक स्वायत्तता का अभाव
- मध्यम वर्ग का उदय
- भौगोलिक दूरी
- धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था में मतभेद
- सप्तवर्षीय युद्ध का प्रभाव
- प्रगति विरोधी आर्थिक नीति
- लेखकों एवं प्रचारकों की भूमिका
- जार्ज तृतीय की निरंकुश नीति
- तात्कालिक कारण-बोस्टन चाय पार्टी

2. भौगोलिक दूरी :

इंग्लैण्ड और अमेरिका की भौगोलिक दूरी काफी अधिक थी। यह दोनों क्षेत्र अटलांटिक महासागर के दो अलग-अलग छोर पर स्थित थे। चूँकि उस समय यातायात एवं संचार साधनों का अभाव था, अतः व्यवहारिक रूप से ब्रिटिश सरकार अपने उपनिवेशों पर प्रभावशाली नियंत्रण बनाए रखने में असमर्थ थी जिसका फायदा स्वतंत्रता संग्राम के दौरान उपनिवेशवासियों को मिला।

3. धार्मिक एवं सामाजिक व्यवस्था में मतभेद :

अमेरिकी उपनिवेश एवं ब्रिटेन के बीच धार्मिक एवं सामाजिक स्तर पर भी मतभेद थे, जहाँ एक ओर ब्रिटिशवासी ऐंग्लिकन मत को मानते थे और चर्च के आधिपत्य में विश्वास करते थे वहीं दूसरी ओर अमेरिकी जनता प्यूरिटन मतावलंबी थी । धार्मिक उत्पीड़न से तबाह होकर प्रोटेस्टेंटों एवं प्यूरिटनों ने इंग्लैण्ड छोड़कर अमेरिका में शरण ली थी । उनमें प्रारंभ से ही जुझारूपन एवं स्वतंत्रता की भावना विद्यमान थे तथा सैनिक क्षमता का प्रदर्शन भी वे कई बार कर चुके थे। यही कारण है कि अमेरिका वासी अपने मातृदेश के साथ संबंध नहीं रखना चाहते थे।

ब्रिटिश समाज सामंतवादी एवं कुलीन व्यवस्था पर आधारित थी जबकि अमेरिकी समाज समतामूलक एवं प्रजातांत्रिक व्यवस्था पर आधारित था। इस प्रकार अमेरिका में धार्मिक एवं सामाजिक समरसता विद्यमान थी जिसने स्वतंत्रता संग्राम के लिए एक मजबूत आधार प्रदान किया।

4. सप्तवर्षीय युद्ध का प्रभाव :

सप्तवर्षीय युद्ध इंग्लैण्ड एवं फ्रांस में 1756 से 1763 ई० के बीच हुआ था। इस युद्ध से पूर्व तक उपनिवेशवासी इंग्लैण्ड से घनिष्ठ रूप से जुड़े हुए थे क्योंकि वे कनाडा में फ्रांसीसियों के विरुद्ध अकेले अपनी रक्षा करने में असमर्थ थे। लेकिन इस युद्ध में फ्रांस की पराजय के साथ

ही यह भय समाप्त हो गया। अब उपनिवेशवासियों का एकमात्र लक्ष्य इंग्लैण्ड को बेदखल करना था। इस युद्ध पर टिप्पणी करते हुए प्रो० पोलार्ड ने कहा था– ''फ्रांस की पराजय ने अमेरिकावासियों की स्वतंत्रता की इच्छा को भड़काया।''

5. प्रगति विरोधी आर्थिक नीति :

सबसे गंभीर मतभेद आर्थिक कारणों से उत्पन्न हुए थे। उपनिवेशवाद का बुनियादी सिद्धांत यह था कि उपनिवेशों के आर्थिक शोषण और उनके संसाधनों के दोहन का अधिकार मातृदेश को है। दूसरी ओर उन्मुक्त व्यापार की धारणा विकसित हो रही थी जिसमें राज्य द्वारा व्यापार को नियंत्रित करने का विरोध किया गया था। इस सिद्धांत के अनुसार उपनिवेशवासी अपने व्यापार एवं अन्य क्रियाकलापों में इंग्लैण्ड के हस्तक्षेप को नापसंद करते थे। अतः उपनिवेशों में विकसित हो रहा मध्यम वर्ग इंग्लैण्ड के कुलीन वर्गीय शासन का अंत चाहता था।

6. आपत्तिजनक कर :

सप्तवर्षीय युद्ध में इंग्लैण्ड की काफी आर्थिक क्षति हुई थी। अतः क्षतिपूर्ति हेतु तत्कालीन प्रधानमंत्री ग्रेनविले ने 1765 ई० में स्टांप एक्ट पारित किया जिसके अनुसार सभी अदालती कागजों, अखबारों आदि पर 20 शिलिंग का स्टांप लगाना अनिवार्य था। इस कानून से उपनिवेशों में व्यापक विरोध की भावना जाग उठी और उपनिवेशवासियों ने ब्रिटेन से आने वाली सभी वस्तुओं का बहिष्कार करने का निश्चय किया। 1767 ई० में ब्रिटिश संसद ने उपभोक्ता वस्तुओं पर कर लगाया। ये वस्तुएँ थी – कागज , शीशा, चाय एवं रोगन। उपनिवेशवासियों ने इन करों का व्यापक विरोध किया तथा सैमुअल एडम्स ने 'प्रतिनिधित्व नहीं तो कर नहीं' का नारा दिया। ब्रिटिश सरकार की कार्रवाइयों का विरोध करने के लिए उपनिवेशवासियों ने 'स्वाधीनता के पुत्र' एवं 'स्वाधीनता की पुत्रियाँ' आदि संस्थाएँ स्थापित की।

स्टांप एक्ट का विरोध करते हुए उपनिवेशवासी

7. लेखकों एवं प्रचारकों की भूमिका :

स्वतंत्रता की भावना जगाने में लेखकों एवं प्रचारकों की अहम् भूमिका रही है। 1776 ई० में टॉमस पेन की लघु पत्रिका कॉमनसेंस प्रकाशित हुई। इसमें अत्यंत प्रभावशाली एवं उत्तेजक शैली में स्वतंत्रता की आवश्यकता पर बल दिया गया। उसने राजतंत्र पर भी करारा प्रहार किया। टॉमस जैफर्सन ने उपनिवेशवासियों के विद्रोह करने के अधिकार का समर्थन किया और उनकी बढ़ती हुई स्वतंत्रता की इच्छा को प्रोत्साहन दिया।

8. जार्ज तृतीय की निरंकुश नीति :

इंग्लैण्ड के शासक जार्ज तृतीय ने सत्ता संभालते ही अमेरिकी उपनिवेश के प्रति निरंकुश नीति अपनाई। उसकी यह नीति इंग्लैण्ड में भी अलोकप्रिय थी। वह व्यक्तिगत शासन के सिद्धांत में विश्वास रखता था जबकि इंग्लैण्ड में मंत्रिमंडल की शक्तियाँ बढ़ने लगी थी। जार्ज तृतीय के अनुत्तरदायी रवैए ने उपनिवेशों के साथ उत्पन्न हुए संकट के शांतिपूर्ण समाधान की संभावनाओं को वस्तुत: ध्वस्त कर दिया जो स्वतंत्रता संग्राम हेतु उत्तरदायी कारक के रूप में सामने आया।

9. तात्कालिक कारण: बोस्टन चाय पार्टी :

1773 ई० में चाय कानून द्वारा ईस्ट इंडिया कंपनी को भारत से सीधे अमेरिका चाय भेजने का एकाधिकार प्रदान किया गया जिसका उपनिवेशवासियों ने जबर्दस्त विरोध किया। जब चाय से

लदा हुआ जहाज अमेरिका के बोस्टन बंदरगाह पर पहुँचा तो वहाँ के कुछ नागरिक आदिवासियों (रेड इंडियन) जैसे कपड़े पहने उस जहाज पर पहुँचे और उन्होंने चाय की सभी पेटियाँ समुद्र में फेंक दी। इस घटना को 'बोस्टन टी पार्टी' के नाम से जाना जाता है। अत: ब्रिटिश सरकार ने बोस्टन बंदरगाह पर व्यापारिक प्रतिबंध लगा दिया और इस प्रकार अमेरिकी उपनिवेश को विद्रोह की आग में धकेल दिया।

जार्ज वाशिंगटन

5 सितम्बर 1774 ई० को 13 उपनिवेशों के प्रतिनिधियों का फिलाडेल्फिया शहर में एक महादेशीय सम्मेलन आयोजित किया गया जिसमें ब्रिटिश कानूनों का विरोध तथा व्यापार के बहिष्कार का निर्णय हुआ। 18 अप्रैल 1775 को ब्रिटिश सेना तथा उपनिवेश वासियों के बीच लेक्सिंग्टन में प्रथम संघर्ष हुआ। इसके पश्चात् 4 जुलाई 1776 ई० में फिलाडेल्फिया में दूसरा महादेशीय सम्मेलन आयोजित हुआ। इसमें टॉमस जैफर्सन द्वारा तैयार किया गया 'स्वतंत्रता का घोषणा पत्र' जारी किया
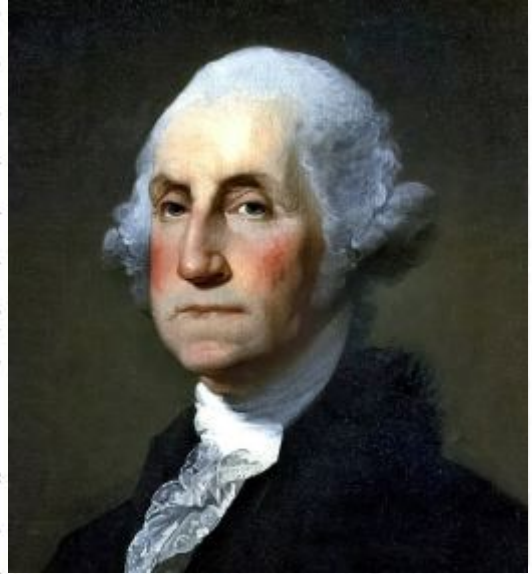
अमेरिकी स्वतंत्रता की घोषणा

गया तथा जार्ज वाशिंगटन को अमेरिकी उपनिवेश का सेनापति नियुक्त किया गया। इस प्रकार अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम पूरी तरह आरंभ हो गया जो 3 फरवरी 1783 को पेरिस की संधि द्वारा समाप्त हुआ तथा 1787 ई० में संविधान का निर्माण हुआ जो 1789 ई० में लागू हुआ। जार्ज वाशिंगटन को प्रथम राष्ट्रपति बनाया गया।

परिणाम :

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम को विश्व इतिहास में एक विभाजन रेखा के रूप में देखा जाता है। इसके तात्कालिक एवं दीर्घकालिक परिणाम दोनों ही निर्णायक थे।

1. ब्रिटेन का एक कीमती उपनिवेश हाथ से निकल गया तथा अटलांटिक महासागर के पार संयुक्त राज्य अमेरिका के रूप में एक शक्तिशाली राष्ट्र का उदय हुआ जिसने पूरे विश्व को प्रभावित किया।

2. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम एक तरह से वाणिज्यवादी प्रतिबंधों के विरुद्ध एक विद्रोह था। अतः इसने 'एडम स्मिथ' के लैसेज-फेयर (मुक्त व्यापार) के सिद्धांत को मजबूत किया।

3. ब्रिटेन की हार का दोष जार्ज तृतीय तथा उसके मंत्रियों के मत्थे मढ़ा गया. फलतः-

   (क) तानाशाह बनने का जार्ज तृतीय का सपना चूर हो गया ।

   (ख) लार्ड नार्थ का मंत्रिमंडल बर्खास्त तथा अधिक उदार मंत्रिमंडल नियुक्त हुआ।

   (ग) इंग्लैण्ड में जल्द ही कई सुधार लागू हुए, जैसे–

      (i) आयरलैंड की संसद को लगभग स्वतंत्र स्थान प्राप्त हआ (1782 ई०में)।

      (ii) कैथोलिक आयरिश लोगों को मताधिकार मिला। (1793 ई० में)

      (iii) आयरिश संसद, वेस्टमिंस्टर संसद से जुड़ा । (1800 ई० में)

   (घ) इस प्रकार, सीमित राजतंत्र और राजनीतिक स्वतंत्रता का वर्चस्व बढ़ गया।

4. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम ने फ्रांस को भी प्रभावित किया। इस संग्राम में 'लफायतें के नेतृत्व में फ्रांसीसी सैनिकों ने भाग लिया था। अतः जब वे स्वदेश लौटे तो निरंकुश

राजतंत्र के प्रति जनता को जागरूक करने का प्रयास किया। दूसरी ओर फ्रांसीसी अर्थव्यवस्था भी बुरी तरह प्रभावित हुई।

5. राजनीति में जनता की भागदारी का मार्ग प्रशस्त हुआ।

6. जनता को धार्मिक एवं अन्तःकरण की स्वतंत्रता मिली तथा मौलिक अधिकारों के माध्यम से लोगों की मूलभूत स्वतंत्रता स्वीकार कर ली गई।

7. विश्व का प्रथम लिखित संविधान अमेरिका में 1789 ई० में लागू किया गया जिसमें महिलाओं को सम्पत्ति का अधिकार मिला तथा उत्तराधिकार कानून को न्यायसंगत बनाया गया।

8. अमेरिका गणतंत्र बना तथा वहाँ मॉण्टेस्क्यू के 'शक्ति-पृथक्करण सिद्धांत' को मान्यता मिला।

9. वयस्क मताधिकार लागू नहीं हुआ तथा स्त्रियों को भी मताधिकार से वंचित रखा गया। मताधिकार का आधार संपत्ति को बनाया गया जो उचित नहीं था।

10. इस प्रकार संयुक्त राज्य अमेरिका का गठन एक नए राज्य के रूप में हुआ जिसमें पहली बार लिखित संविधान , शक्ति के पृथक्करण का सिद्धांत, धर्मनिरपेक्षता का सिद्धांत और व्यक्तिगत स्वतंत्रता का सिद्धांत राजनैतिक व्यवस्था के मूल आधार माने गए। इन सिद्धांतों का प्रसार यूरोप में भी हुआ और फ्रांस की राज्यक्रांति ने 1789 में इन्हीं सिद्धांतों को मार्गदर्शक सिद्धांतों के रूप में समस्त विश्व के लिए स्थापित कर दिया।

औद्योगीकरण का प्रभाव

अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के समय से ही पश्चिमी यूरोप की औद्योगिक क्रांति नवनिर्मित अमेरिकी समाज में प्रवेश कर रही थी। अतः इससे आर्थिक प्रगति की अपार संभावनाओं का उदय हुआ। अब यहाँ एक नई कार्य-संस्कृति विकसित हुई तथा अनेक उद्योग-धंधों एवं कल-कारखानों का निर्माण हुआ जिसके लिए कच्चा माल पहले से ही मौजूद था। औद्योगीकरण के फलस्वरूप कृषि को भी प्रोत्साहन मिला। अतः आर्थिक क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हासिल हुई जिसका परिणाम एक सशक्त एवं विकसित देश के रूप में संयुक्त राज्य अमेरिका का उदय था।

इंग्लैण्ड की असफलता के कारण

यद्यपि इंग्लैण्ड काफी शक्तिशाली था एवं विश्व में उसके कई उपनिवेश भी थे। परन्तु उसे अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में हार का मुँह क्यों देखना पड़ा? इंग्लैण्ड की असफलता के निम्न कारण थे:-

1. अमेरिकी उपनिवेश अटलांटिक महासागर के पार 3,000 मील की दूरी पर स्थित थे। अत: वहाँ समय से सेना एवं रसद पहुँचने में कठिनाई होती थी। दूसरी ओर अमेरिका की भौगोलिक स्थिति से भी अंग्रेजी सैनिक परिचित नहीं थे।
2. अमेरिका की शक्ति को नजरअंदाज किया गया एवं अधिकांश अंग्रेज इसे गृहयुद्ध ही समझते रहे।
3. उपनिवेश वासियों में एकता एवं उत्साह था। वे स्वतंत्रता के लिए कुछ भी करने को तैयार थे।
4. ब्रिटिश सेनापतियों ने कुछ सामरिक भूलें की।
5. ब्रिटिश राजनेताओं के बीच गंभीर मतभेद थे। जार्ज तृतीय की हठधर्मिता की नीति के कारण योग्य एवं अनुभवी नेता सरकार से अलग रहे।
6. ब्रिटेन विदेशी सहायता से वंचित रहा जबकि अमेरिकी उपनिवेशों को विदेशी सहायता प्राप्त हुई। विशेष कर फ्रांस ने उपनिवेशवासियों को धन-जन से काफी मदद पहुँचाई।
7. अमेरिका को जार्ज वाशिंगटन जैसा सुयोग्य नेता मिल गया जिसने बड़े धैर्य, साहस एवं कुशलता के साथ अंग्रेजी सेना को पराजित किया।

तालिका-1

अमेरिका 13 उपनिवेश

	उपनिवेशों का नाम
1	न्यू हैंपशायर
2	मेसाचूसेट्स
3	रोड आइलैंड
4	कनेक्टिकट
5	न्यूयार्क
6	न्यूजर्सी
7	पेनसिलवेनिया
8	डेलावेयर
9	मेरीलैण्ड
10	वर्जीनिया
11	उत्तरी कैरोलाइना
12	दक्षिणी कैरोलाइना
13	जार्जिया

अभ्यास :

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. अमेरिका की राजधानी कहाँ है ?

(क) न्यूयार्क (ख) कैलिफोर्निया

(ग) वाशिंगटन (घ) कोई नहीं।

2. 'कॉमनसेंस' की रचना किसने की थी ?

(क) जैफर्सन (ख) टॉमस पेन

(ग) वाशिंगटन (घ) लफायते

3. स्टांप एक्ट किस वर्ष पारित हुआ था ?

(क)1765 (ख)1764

(ग)1766 (घ)1767

4. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में अँग्रेजों का सेनापति कौन था ?

(क) वाशिंगटन (ख) वेलेजली

(ग) कार्नवालिस (घ) कर्जन

5. अमेरिकी संविधान कब लागू हुआ ?

(क) 1787 (ख) 1789

(ग) 1791 (घ) 1793

6. विश्व में प्रथम लिखित संविधान किस देश में लागू हुआ ?

(क) इंग्लैण्ड (ख) फ्रांस

(ग) अमेरिका (घ) स्पेन

7. किस संधि के द्वारा अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम को मान्यता मिली ?

(क) पेरिस की संधि (ख)विलाफ्रैंका की संधि

(ग) न्यूली की संधि (घ) सेव्रे की संधि।

8. अमेरिकी स्वतंत्रता में अमेरिका का सेनापति कौन था ?

(क) ग्रेनविले (ख) जैफर्सन

(ग) लफाएते (घ) वाशिंगटन

9. अमेरिका के प्रथम राष्ट्रपति कौन थे ?

(क) जार्ज वाशिंगटन (ख) अब्राहम लिंकन

(ग) रूजवेल्ट (घ) अलगोर

10. सप्तवर्षीय युद्ध किन दो देशों के बीच हुआ था?

(क) ब्रिटेन-अमेरिका (ख) फ्रांस-कनाडा

(ग) ब्रिटेन-फ्रांस (घ) अमेरिका-कनाडा

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

1. लैसेज फेयर का सिद्धांत .... ने दिया था।
2. शक्ति के पृथक्करण का सिद्धांत .... ने दिया था।
3. सेनापति लफाएते .... का रहने वाला था।
4. जार्ज तृतीय इंग्लैण्ड का .... था।
5. धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना सर्वप्रथम .... में हुई।
6. नई दुनिया (अमेरिका) का पता .... ने लगाया था।
7. अमेरिका में अँग्रजों के .... उपनिवेश थे।
8. सर्वप्रथम आधुनिक गणतंत्रात्मक शासन की स्थापना .... में हुई।
9. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम का तात्कालिक कारण .... था।
10. 'राइट्स ऑफ मैन' की रचना .... ने की थी।

III. सही/गलत कथन का चुनाव करें तथा उसके सामने कोष्ठक में उपयुक्त चिह्न अंकित करें :

1. जार्ज वाशिंगटन अमेरिका के प्रथम प्रधानमंत्री थे। [ ]
2. अमेरिका यूरोप महादेश में स्थित है। [ ]
3. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के दौरान स्वाधीनता के पुत्र एवं पुत्री नामक संगठन का निर्माण हुआ था। [ ]
4. अमेरिका की खोज कोलम्बस ने नहीं किया था। [ ]

5. अमेरिका स्वतंत्रता संग्राम में फ्रांस ने इंग्लैण्ड का साथ दिया था। [ ]

6. अमेरिका स्वतंत्रता का घोषणा पत्र जैफर्सन ने तैयार किया था। [ ]

7. स्टांप एक्ट ग्रेनविले के समय पारित हुआ था। [ ]

IV. 10 शब्दों में उत्तर दें।

1. गणतंत्र 2. मौलिक अधिकार 3. मताधिकार

4. उपनिवेश 5. राजतंत्र

V. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. अमेरिका या नई दुनिया की खोज क्यों हुई?
2. नई दुनिया की खोज इंग्लैण्ड के लिए वरदान साबित हुआ कैसे?
3. मुक्त व्यापार के सिद्धांत ने उपनिवेशवासियों को क्रांति के लिए प्रेरित किया कैसे?
4. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम ने फ्रांस पर भी प्रभाव डाला है— कैसे?
5. क्या अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के परिणामों ने औपनिवेशिक विश्व को प्रभावित किया?

VI. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के तीन प्रमुख कारणों की विवेचना कीजिए।
2. लोकतांत्रिक स्तर पर अमेरिकी संग्राम ने विश्व को कैसे प्रभावित किया है?
3. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम के परिणामों की आलोचनात्मक परीक्षण करें।
4. अमेरिकी स्वतंत्रता संग्राम में अँग्रेजों के पराजय के क्या कारण थे?

इकाई-3

फ्रांस की क्रांति

सन् 1789 की फ्रांस की क्रांति यूरोप के इतिहास में एक युगान्तकारी घटना थी, जिसने एक युग का अन्त और दूसरे युग के आगमन का मार्ग प्रशस्त किया। इस क्रांति ने फ्रांस में राजतंत्र को समाप्त कर सामाजिक व्यवस्था के नये विचारों-'स्वतंत्रता', 'समानता' एवं 'बन्धुत्व', तथा मानव अधिकार के नये सिद्धान्तों-'आदमी स्वतंत्र पैदा होता है', को प्रतिष्ठापित किया और यूरोप की पुरानी रीतियों तथा संस्थाओं को चुनौती दी। इस तरह के विचार-स्वातंत्र्य का प्रादुर्भाव यूरोप में पुनर्जागरण के परिणाम स्वरूप हुआ था, जिसने यूरोप में कई राष्ट्रवादी क्रांतियों को जन्म दिया। ये क्रांतियाँ सामन्तवादी एवं निरंकुश शासन व्यवस्था तथा शोषण करने वाली सामाजिक व्यवस्था के खिलाफ थीं। इसी क्रम में सन् 1776 ई० में शुरू हुआ अमेरिका का स्वतंत्रता संग्राम और सन् 1783 ई० में ब्रिटेन के विरुद्ध उसके उपनिवेशों की स्वाधीनता ने फ्रांस की पुरातन व्यवस्था को समाप्त कर स्वतंत्र विचार वाले समाज की स्थापना का मार्ग प्रशस्त किया। चूँकि फ्रांस ने इस युद्ध में ब्रिटेन के खिलाफ अमेरिका की मदद की थी, अत: अमेरिका के बाद स्वतंत्रता की लहर फ्रांस में आई और इन सैनिकों ने फ्रांस में जनता का साथ दिया।

फ्रांस की क्रांति क्यों और कैसे हुई, यह समझने के लिए हमें तत्कालीन राजनीति एवं समाज का अध्ययन करना होगा। यद्यपि अठारहवीं शताब्दी में फ्रांस एक शक्तिशाली राज्य था, उसने उत्तरी अमेरिका के एक विस्तृत क्षेत्र, पश्चिमी द्वीप समूह और अफ्रीका में मेडागास्कर के टापू पर अधिकार कर लिया था, फिर भी सत्ता की नींव मजबूत नहीं थी। लम्बे समय तक चले युद्धों के कारण आर्थिक संसाधनों की कमी तथा शासकों की फिजुलखर्ची ने फ्रांस की जनता पर अत्यधिक करों का बोझ डाल दिया और सामाजिक विषमताओं के उत्पीड़न ने उन्हें क्रांति के कगार पर ला दिया। अत: क्रांति के उत्तरदायी कारणों की व्याख्या निम्न तरीके से की जा सकती है।

3.1 राजनैतिक कारण :

फ्रांस में राजतंत्रात्मक शासन व्यवस्था थी। बूर्बो राजवंश के लुई XIV के शासन काल में साम्राज्य की प्रतिष्ठा उच्च शिखर पर थी, लेकिन उसके बाद के शासक आयोग्य सिद्ध हुए। सन् 1774 ई० में लुई XVI गद्दी पर बैठा, जो अत्यधिक निरंकुश, फिजुलखर्च एवं अयोग्य था। उसका विवाह आस्ट्रिया की राजकुमारी मेरी अन्तोयनेत के साथ हुआ था, जो उत्सवों में काफी रुपये लुटाती थी, और अपने खास आदमियों को ओहदे दिलाने के लिए राजकार्य में दखल देती रहती थी। राजा के वर्साय स्थित महल में पन्द्रह हजार अधिकारी ऐसे थे जो कोई भी काम नहीं करते थे, मगर अपार धनराशि वेतन के रूप में लेते थे। राजस्व का 9 प्रतिशत इन्हीं पर व्यय होता था। लुई XVI के शासन काल में अमेरीका के तेरह उपनिवेशों को ब्रिटेन से आजाद कराने में फ्रांस पर 10 अरब लिव्रे (तत्कालीन फ्रांस की मुद्रा) से भी अधिक का कर्ज बढ़ गया था। पहले से ही चली आ रही आर्थिक संसाधनों की कमी ने राजा को अपने नियमित खर्च को चलाने के लिए जनता पर करों में वृद्धि के लिए वाध्य किया।

राजनैतिक कारण

- निरंकुश एवं आयेग्य शासन
- संसद की बैठक 175 वर्षों तक नहीं बुलाई गयी।
- अत्यधिक केन्द्रीयकरण की नीति।
- स्वायत्त शासन का अभाव
- मेरी अन्तोयनेत का प्रभाव

निरंकुश राजतंत्र पर नियंत्रण का अभाव था। यद्यपि स्टेट्स जेनरल (States General) संसदीय संस्था थी, लेकिन राजा की निरंकुशता का यह एक बड़ा उदाहरण था कि सन् 1614 ई० के बाद 175 वर्षों तक इसकी कोई बैठक नहीं हुई थी। लुई XIV की निरंकुशता इस बात से पता चलता है कि वह कहा करता था कि ''मैं ही राज्य हूँ'' (I am the state) लेकिन चूँकि वह योग्य शासक था, विद्रोहियों को कुशलतापूर्वक दबा देता था। अतः उस समय राज्य की पूरी शक्ति उसके हाथ में निहित हो गयी थी, लेकिन उसके उत्तराधिकारियों में इस तरह के गुणों का अभाव था।

राजा की निरंकुशता एवं स्वेच्छाचारिता पर अंकुश लगाने के लिए फ्रांस में पार्लमा नामक संस्था थी, जिसकी संख्या 17 थी और जिसका गठन न्यायालय के रूप में किया गया था। न्यायाधीशों का पद कुलीन वर्ग के लिए सुरक्षित होता था और ये पद वंश क्रमानुगत होते थे। आवश्यकता पड़ने पर राजा इन्हें पैसे के बल पर अपनी बात मनवाने के लिए बाध्य कर देते थे। इस तरह व्यवहार में इस पर भी राजा का ही नियंत्रण होता था।
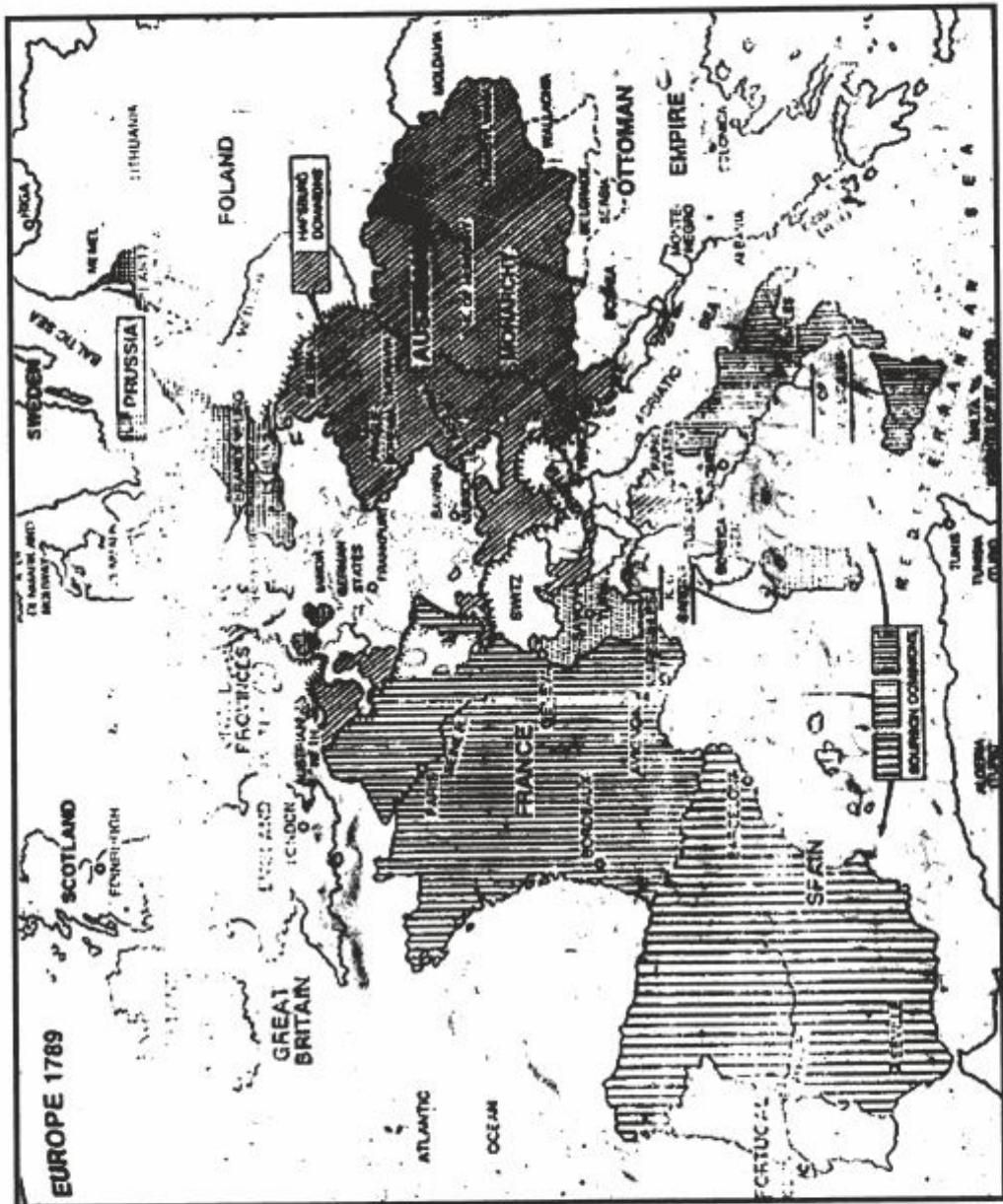
सन् 1789 ई0 फ्रांस का राजनीतिक मानचित्र

केंद्रीयकरण की प्रवृत्ति फ्रांसीसी क्रांति की सबसे बड़ी बुराई थी। स्वायत्त शासन का सर्वथा अभाव था, जबकि पड़ोस के इंग्लैंड में इस तरह के शासन का संचालन स्वायत्त शासन की संस्थाओं द्वारा होता था। फ्रांस में हर जगह वर्साय के राजमहल की ही प्रधानता थी। राजा के अलावे मेरी अन्तोयनेत के द्वारा शासन का दुरुपयोग किया जाता था, जिससे जनसाधारण की धारणायें राजतंत्र के बिलकुल खिलाफ हो गयी। सन् 1789 ई० तक आते-आते जनसाधारण शासन में भाग लेने के लिए उतावला होने लगे। उस समय वहाँ कोई भी ऐसी संस्था नहीं थी, जो उनकी उग्र मनोवृत्ति पर रोक लगा सके।

सामाजिक कारण :

अठारहवीं शताब्दी में फ्रांसीसी समाज तीन एस्टेट्स (Estates) अर्थात् श्रेणी में बँटा हुआ था। प्रथम एस्टेट् में पादरी (Clergy) थे, जिनकी संख्या लगभग एक लाख तीस हजार (1,30,000) थी। दूसरे एस्टेट् में अभिजात वर्ग (Nobility) था, जिसमें लगभग अस्सी हजार (80,000) परिवार या चालीस लाख (40,00,000) व्यक्ति थे। ये दोनों वर्ग करों से मुक्त थे। उस समय फ्रांस की जनसंख्या लगभग ढाई करोड़ (2,50,00,000) थी। फ्रांस की कुल भूमि का 40 प्रतिशत इन्हीं के पास था।

90 प्रतिशत जनता तीसरे एस्टेट् में थी, जिनको कोई भी विशेषाधिकार प्राप्त नहीं था। ये अपने स्वामी की सेवा, स्वामी के घर एवं खेतों में काम करना, सैन्य सेवायें देना अथवा सड़कों के निर्माण में सहयोग देना आदि कार्यों के लिए बाध्य थे। उन्हें सभी प्रकार के कर देने पड़ते थे। इसी वर्ग में डॉक्टर, वकील, जज, अध्यापक, व्यापारी, शिक्षक, लेखक, शिल्पी एवं मजदूर आदि शामिल थे, जो शहरी क्षेत्र में रहते थे। यह
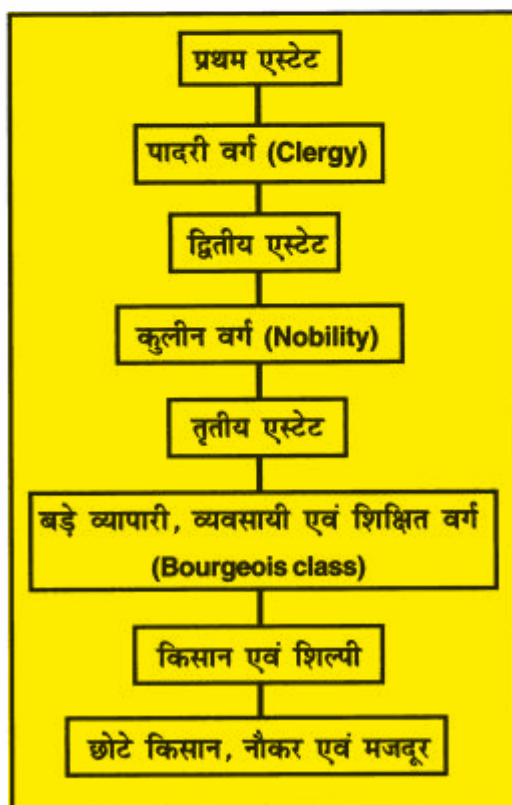
वर्ग मध्यम वर्ग (Bourgeois) कहलाता था, जिन्होंने फ्रांस की क्रांति में अहम् भूमिका निभाई।

मध्यम वर्ग में सबसे अधिक असंतोष था, जिसका सबसे बड़ा कारण यह था कि सुयोग्य एवं सम्पन्न होते हुए भी उन्हें कुलीनों जैसा सामाजिक सम्मान प्राप्त नहीं था। सम्पन्नता और उन्नति के बावजूद भी वे सभी तरह के राजनैतिक अधिकारों से वंचित थे। राज्य में सभी बड़े पद कुलीनों के लिए सुरक्षित थे। उनका मानना था कि सामाजिक ओहदे का आधार योग्यता होना चाहिए, न कि वंश।

सामाजिक कारण :
1. मध्यम वर्ग में राजनैतिक अधिकारों के प्रति सजगता।

सामाजिक असमानता से असंतोष।

3. कृषकों की दयनीय स्थिति।

मध्यम वर्ग के साथ कुलीन वर्ग के लोग बहुत बुरा और असमानता का व्यवहार करते थे। यह बात उन्हें बहुत अपमानजनक लगती थी। इसी वजह से फ्रांस की क्रांति का सबसे महत्वपूर्ण नारा 'समानता' था, जिसे मध्यम वर्ग ने आगाज किया।

फ्रांसीसी समाज में कृषकों की स्थिति तो और भी दयनीय थी। उन्हें अनेक प्रकार का कर देना पड़ता था। कहा जाता है कि क्रांति के पूर्व फ्रांस में कुलीन लड़ते थे, पुजारी पूजा करते थे और जन साधारण उनका खर्च जुटाते थे। (The Nobles fight, the clergy pray and The people pay.) ।

आर्थिक कारण :

विदेशी युद्ध और अपव्यय ने फ्रांस की आर्थिक स्थिति डाँवाडोल कर दी थी। प्रतिवर्ष आय से अधिक व्यय होता था। इसलिए कर लगाने की प्रथा प्रचलित थी। यह कर व्यवस्था असमानता और पक्षपात के सिद्धान्त पर आधारित थी। कर निश्चित करने और वसूलने का तरीका भी समान नहीं था। प्रत्येक पाँच या छः वर्ष बाद फ्रांस की सरकार पूँजीपतियों को कर वसूलने का ठेका देती थी। ये पूँजीपति 'टैक्स-फार्मर' कहे जाते थे। ये रैयतों से अधिक से अधिक टैक्स वसूलते थे, और सरकार को निश्चित रकम देने के बाद बाकी रकम को अपने जेब में रख लेते थे। इस तरह बेचारे किसान अत्यधिक आर्थिक कष्ट का सामना कर रहे थे।

आर्थिक कारण :
1. असमान कर प्रणाली।
2. भूमिकर, धार्मिक कर एवं अन्य सामन्ती कर का बोझ।
3. बेरोजगारी की समस्या।
4. गिल्ड की पाबन्दी, प्रान्तीय आयात कर। एवं सामन्ती आयात कर से व्यापारियों में असंतोष।

फ्रांस के लोगों में आर्थिक असंतोष ने देश को क्रांति के कगार पर पहुँचा दिया। राजकोष के घाटे के भरपाई के लिए उनपर तरह-तरह के कर लगाए गए थे। किसानों को भूमि कर -'टैले' (Taille) चुकाना पड़ता था। इसके अलावे 'टीथे' (Tithe) नामक धार्मिक कर भी इन्हें चर्च को देना पड़ता था। अनेक तरह के अप्रत्यक्ष कर नमक और तम्बाकू जैसी दैनिक उपभोग की वस्तुओं पर भी देना पड़ता था। साथ ही कई भेंट, टोल टैक्स, नजराने आदि भी सामन्ती कर के रूप में उन्हें देना पड़ता था। इस तरह फ्रांस की आम जनता की आर्थिक स्थिति दिन-प्रतिदिन दयनीय होती जा रही थी।

करों के आर्थिक बोझ के अलावे फ्रांस की आर्थिक स्थिति को दयनीय बनाने में वहाँ के समाज में व्याप्त बेकारी की समस्या ने भी अहम् भूमिका अदा की। उस समय औद्योगिक क्रांति हो चुकी थी और देश में मशीनों का प्रयोग आरम्भ हो चुका था। इसकी वजह से हाथ से काम करने वाले कारीगर और मजदूर घरेलू उद्योग-धन्धे विनष्ट हो जाने से बेरोजगार हो गए थे। इन्होंने क्रांति के समय राजा के खिलाफ क्रांतिकारियों का साथ दिया।

इसके अलावे अव्यवस्थित शासन व्यवस्था ने फ्रांस के व्यापारिक जीवन को भी पंगु बना दिया था। फ्रांसिसियों के जीवन में एकरूपता नहीं रहने के कारण उन्हें व्यापारिक विनिमय में कई तरह की कठिनाइयों का सामना करना पड़ता था। तरह-तरह के प्रतिबन्ध जैसे-गिल्ड की पाबन्दी, शहरों के व्यापार सम्बन्धी नियम, प्रान्तीय आयात कर, सामन्तवादी कर इत्यादि व्यापारियों पर लगाए गए थे। इन बंधनों में जकड़े रहने के कारण व्यापार का विकास लगभग रुक गया था। व्यापारी चाहते थे कि देश के व्यापार को हर तरह के बंधनों से मुक्त कर दिया जाय।

इस तरह असंतोषजनक एवं अन्यायपूर्ण वातावरण में देश का विकास अवरुद्ध होने के साथ-साथ सरकारी फिजुलखर्ची, जो लुई-XVI एवं मेरी अन्तोयनेत अपने ऐश-आराम एवं भोग-विलास की वस्तुओं पर करते थे, ने राजकोष को प्रभावित किया। ऐसी स्थिति में सरकार मितव्ययिता से काम लेने की जगह कर्ज लेने और कर लगाने पर ज्यादा केंद्रित थी।

सैनिक कारण :

फ्रांस के सैनिकों में भी बहुत अधिक अंसतोष था। सैनिक के पद पर किसानों को बहाल किया जाता था। कम वेतन, कठोर अनुशासन और खराब भोजन आदि से वे रूष्ट रहते थे। सेना के निम्न पदों पर उनकी नियुक्ति होती थी, उच्च

सैनिक कारण

1. नियुक्ति में असमानता
2. कम वेतन का निर्धारण
3. खराब भोजन की व्यवस्था

पद कुलीनों के लिए सुरक्षित थे। आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति की वजह से फ्रांस की सेना ने भी आगे चलकर क्रांतिकारियों का साथ दिया।

व्यक्तिगत एवं धार्मिक कारण :

फ्रांस में सभी तरह की स्वतंत्रताओं का अभाव था। भाषण, लेखन, विचार की अभिव्यक्ति तथा धार्मिक स्वतंत्रता का पूर्ण अभाव था। वहाँ राजधर्म कैथोलिक धर्म था और प्रोटेस्टेंट धर्म के मानने वालों को कठोर सजा दी जाती थी। इतना ही नहीं वैयक्तिक स्वतंत्रता का भी अभाव था। राजा या उसका कोई भी आदमी किसी व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकता था। इसके लिए फ्रांस में बिना अभियोग के गिरफ्तारी वारंट होता था, जिसको लेटर्स-द-कैचेट (Letters-de-cachet) कहते थे।

व्यक्तिगत एवं धार्मिक कारण :

1. **भाषण, लेखन और विचार की स्वतंत्रता का अभाव।**
2. **धार्मिक स्वतंत्रता का अभाव।**
3. **बिना अभियोग के व्यक्तियों को गिरफ्तार करना।**
4. **कानूनों में एकरूपता का अभाव।**

फ्रांस में कानूनों में भी एकरूपता नहीं थी, देश के विभिन्न क्षेत्रों में लगभग 400 कानून लागू थे। किसी को भी यह जानकारी नहीं होती थी कि उसके मुकदमें का फैसला किस कानून के तहत होगा।

बौद्धिक कारण :

फ्रांसीसी क्रांति के विषय में यह कहा जाता है कि यह एक मध्यवर्गीय क्रांति थी, जिसमें शिक्षित वर्ग के लोगों ने तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक दोषों को पर्दाफाश किया और जनमानस में आक्रोश पैदा किया। फ्रांसीसी बुद्धिजीवियों ने फ्रांस में बौद्धिक आन्दोलन का सूत्रपात किया। इनमें प्रमुख मांटेस्क्यू (Montesquiey), वाल्टेयर (Voltair) और रूसो (Rouseau) थे। मांटेस्क्यू ने अपनी पुस्तक 'विधि की आत्मा' (The Sprit of Laws) में सरकार के तीन अंगों कार्यपालिका,

मांटेस्क्यू

वाल्टेयर

विधायिका और न्यायपालिका को अलग-अलग रखने के विषय में बताकर शक्ति पृथक्करण सिद्धान्त का पोषण किया। वाल्टेयर ने चर्च, समाज और राजतंत्र के दोषों का पर्दाफाश किया। यद्यपि वह जनतंत्र का पक्षधर नहीं था, तथापि राजतंत्र प्रजाहित में होना चाहिए, इसका प्रबल समर्थक था। मांटेस्क्यू और वाल्टेयर सुधार चाहते थे। परन्तु रूसो पूर्ण परिवर्त्तन चाहता था। उसने अपने प्रसिद्ध पुस्तक 'सामाजिक संविदा' (Social Contract) में राज्य को व्यक्ति द्वारा निर्मित संस्था, और सामान्य इच्छा (General will) को संप्रभु माना है। अतः वह जनतंत्र का समर्थक था। दिदरो के 'वृहत ज्ञानकोष' (Encyclopaedia) के लेखों ने फ्रांस में क्रांतिकारी विचारों का प्रचार किया। फ्रांस में क्वेजनो (Quesney) एवं तुर्गो (Turgot) जैसे अर्थशास्त्रियों ने समाज में आर्थिक शोषण एवं आर्थिक नियंत्रण की आलोचना करते हुए मुक्त व्यापार (Laissezfaire) का समर्थन किया।

रूसो

विदेशी घटनाओं का प्रभाव :

विदेशी घटनाओं का प्रभाव
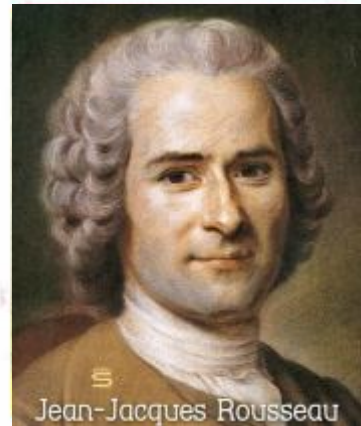
1. इंगलैंड की गौरवपूर्ण क्रांति
2. अमेरिका स्वतंत्रता संग्राम

इंगलैंड की गौरवपूर्ण क्रांति– सन् 1688 ई० की इंगलैंड की महान् क्रांति (Glorious Revolution) एवं उसके द्वारा वैधानिक शासन की स्थापना ने फ्रांस में भी राजनैतिक परिवर्त्तन का मार्ग प्रशस्त किया।

अमेरिका का स्वतंत्रता संग्राम– अमेरिका के स्वतंत्रता संग्राम में लफायते के नेतृत्व में फ्रांसीसी सेना ने इंगलैंड के विरुद्ध भाग लिया था, जिससे वहाँ गणतांत्रिक शासन की स्थापना हुई थी। फ्रांस की जनता के लिए यह प्रेरणा स्रोत का कार्य किया। इससे एक और भी तरह से क्रांति को बल मिला। इसमें अत्यधिक धन व्यय ने फ्रांस की आर्थिक स्थिति को इतना दयनीय बना दिया कि उसे सम्भालना देश के लिए असम्भव बन गया, और अन्त में यह फ्रांस की क्रांति का तात्कालिक कारण बन गया।

टेनिस कोर्ट शपथ

3.2 क्रांति का घटना क्रम :

सन् 1789 ई० में लुई XVI को धन की आवश्यकता हुई। इसके लिए 5 मई, सन् 1789 ई० को उसने स्टेट्स जेनरल की बैठक बुलाई। इसमें प्रथम एवं द्वितीय स्टेट्स के क्रमशः 300-300 प्रतिनिधि एवं तृतीय स्टेट्स के 600 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। तृतीय स्टेट्स ने लोकतांत्रिक सिद्धान्त को आधार बनाकर सभी प्रतिनिधियों के लिए मत देने का अधिकार मांगा। यह राजा द्वारा अस्वीकृत हो गया। तभी तीसरे स्टेट्स के सभी प्रतिनिधि विरोध जताते हुए बाहर निकल गए। 20 जून को जब वे अधिवेशन करने के लिए एकत्रित हुए तब उन्होंने देखा कि जिस हॉल में उनका अधिवेशन होने वाला था, वहाँ शाही अंगरक्षकों का पहरा था। अतः सभी तृतीय स्टेट्स के प्रतिनिधि टेनिस कोर्ट में एकत्रित हुए। इन्होंने अपनी सभा को नेशनल एसेम्बली (National Assembly) घोषित किया तथा यह शपथ ली कि राजा की शक्तियों को कम करने वाला संविधान जब तक बनकर तैयार नहीं हो जाता, यह सभा भंग नहीं होगी।

राजा द्वारा इसे भंगकर सदस्यों को बंदी बनाने की अफवाह उठी, तभी बहुत बड़ी संख्या में लोग वहाँ इकट्ठे हुए। उनलोगों का नेतृत्व मिराब्यो एवं ओबेसियो जैसे नेता कर रहे थे। यद्यपि मिराब्यो सामन्त परिवार का था, फिर भी वह सामन्तों के विशेषाधिकारों को समाप्त करने का पक्षधर था।

बैस्टिल का पतन

14 जुलाई, सन् 1789 को क्रांतिकारियों ने पेरिस स्थित राज्य के कारागृह बैस्टिल (Bastille) को घेर लिया। बैस्टिल का दुर्ग राजतंत्र के निरंकुशता का प्रतीक था। चार घंटे डेरा डालने के बाद वे जेल का फाटक तोड़ने एवं बन्दियों को मुक्त कराने में सफल हुए। बैस्टिल कारागृह की समाप्ति निरंकुश शासन के पतन का प्रतीक था। फ्रांस में 14 जुलाई ही स्वतंत्रता दिवस के रूप में मनाया जाता है।

14 जुलाई, सन् 1789 के बाद लुई XVI नाम मात्र के लिए राजा बना रहा और नेशनल एसेम्बली देश के लिए अधिनियम बनाने लगी। इसी सभा ने 27 अगस्त, 1789 को 'मानव और नागरिकों के अधिकार' (The Declaration of the rights of Man and citizen) को स्वीकार किया । इस घोषणा से प्रत्येक व्यक्ति को अपने विचार प्रकट करने और अपनी इच्छानुसार धर्मपालन करने

के अधिकार को मान्यता मिली। व्यक्तिगत स्वतंत्रता के साथ प्रेस एवं भाषण की स्वतंत्रता भी मानी गयी । अब राज्य किसी भी व्यक्ति को बिना मुकदमा चलाये गिरफ्तार नहीं कर सकता था, तथा मुआवजा दिए बिना उसके जमीन पर कब्जा नहीं कर सकता था । मध्यम वर्ग के लिए सबसे महत्वपूर्ण निश्चय वे थे, जिनके अनुसार कर का भार सभी वर्गों पर समान रूप से डालने का निश्चय किया गया, और सभी को निजी सम्पत्ति रखने का अधिकार दिया गया । फ्रांस के लिए ही नहीं, बल्कि पूरे यूरोप के लिए यह क्रांतिकारी घोषणा अत्यधिक महत्वपूर्ण थी।

मानव और नागरिकों के अधिकार

सन् 1791 ई० में नेशनल एसेम्बली ने संविधान का प्रारूप तैयार कर लिया, जिसमें शक्ति पृथक्करण के सिद्धान्त को अपनाया गया। इस तरह फ्रांस में संवैधानिक राजतंत्र की स्थापना हुई।

यद्यपि लुई XVI ने नये संविधान को मान लिया, परन्तु मिराव्यो की मृत्यु के पश्चात् देश में हिंसात्मक विद्रोह की शुरूआत हो गयी। विदेशों में भी कुलीन वर्गों के द्वारा संविधान का विरोध किया गया । अप्रैल 1792 में नेशनल एसेम्बली ऑस्ट्रिया तथा प्रशा के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी । क्रांतिकारी युद्धों से जनता को काफी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ी । उस समय सभी नागरिकों को मतदान का अधिकार नहीं मिला था । नेशनल एसेम्बली का चुनाव भी अप्रत्यक्ष रूप से किया जाना था । उपरोक्त बातें आलोचना का विषय बन गयी थीं । आलोचकों में प्रमुख जैकोबिन क्लब के सदस्य थे, जिसमें छोटे दुकानदार, कारीगर, घड़ीसाज, नौकर एवं दिहाड़ी मजदूर आदि शामिल थे । जैकोबिन क्लब पेरिस के भूतपूर्व कान्वेंट ऑफ सेंट जेकब के नाम पर रखा गया था, जिसका नेता मैक्समिलियन रॉब्सपियर था ।

3.3. आतंक का राज्य :

रॉब्सपियर वामपंथी विचारधारा का समर्थक था । अत: खाद्य पदार्थों की महँगाई एवं अभाव से नाराज होकर उसने हिंसक विद्रोह की शुरूआत की, और आतंक का राज्य स्थापित किया । चौदह महीनों में लगभग सतरह हजार व्यक्तियों पर मुकदमे चलाये गए और उन्हें फाँसी दे दी गयी। रॉब्सपियर प्रत्यक्ष प्रजातंत्र का पोषक था। 21 वर्ष से अधिक उम्र वालों को मतदान का अधिकार देकर, चाहे उनके पास सम्पत्ति हो या न हो, चुनाव कराया गया । 21 सितम्बर 1792 को नव निर्वाचित एसेम्बली को कन्वेंशन नाम दिया गया तथा राजा की सत्ता को समाप्त कर दिया गया । देश द्रोह के अपराध में लुई XVI पर मुकदमा चलाया गया और 21 जनवरी 1793 को उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया गया । बाद में मेरी अन्तोयनेत को भी फाँसी दे दी गयी ।

रॉब्सपियर द्वारा स्थापित आंतक का राज्य अक्टूबर 1793 में उत्कर्ष पर था । कन्वेंशन द्वारा राष्ट्र की एकमात्र भाषा फ्रेंच घोषित की गयी । कानूनों का संकलन कराया गया, उपनिवेशों में गुलाम बनाकर भेजने की प्रथा समाप्त की गयी, प्रथम पुत्र को ही उत्तराधिकार बनाने की प्रथा को समाप्त किया गया । राष्ट्र का नया कलेण्डर (22 सितम्बर 1792) लागू किया गया । इन सभी को रॉब्सपियर ने सर्वोच्च सत्ता की प्रतिष्ठा के रूप में स्थापित किया । परन्तु ये अस्थाई सिद्ध हुए । उसकी हिंसात्मक कार्रवाइयों की वजह से विशेष न्यायालय ने जुलाई 1794 में उसे मृत्युदंड दिया । उसके बाद सन् 1795 ई० में नया संविधान बनाया गया, जिसने फ्रांस में गणतांत्रिक शासन की शुरूआत की। आगे चलकर नेपोलियन बोनापार्ट ने स्वयं को इस गणराज्य का प्रधान घोषित कर अपनी विधि संहिता लागू किया। उसके सुधार कार्यों ने तत्कालीन फ्रांस के उत्थान में काफी सहयोग प्रदान किया।

3.4. क्रांति के परिणाम :

पुरातन व्यवस्था का अन्त : फ्रांस की क्रांति ने वहाँ की पुरातन व्यवस्था (Anceient Regime) को समाप्त कर आधुनिक युग को जन्म दिया, जिसमें 'स्वतंत्रता', 'समानता' तथा 'बन्धुत्व' (Liberty, Equality and Fraternity) को प्रोत्साहन मिला। सामन्तवाद का अंत हो गया।

धर्मनिरपेक्ष राज्य : इस क्रांति ने राज्य को धर्म से अलग कर धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की। धार्मिक क्षेत्र में बुद्धिवाद का उदय हुआ और जनता को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की गयी।

परिणाम

1. पुरातन व्यवस्था का अंत
2. धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना
3. जनतंत्र की स्थापना
4. व्यक्ति की महत्ता की स्वीकृति
5. समाजवाद का प्रारम्भ
6. वाणिज्य व्यापार में वृद्धि
7. दास प्रथा का उन्मूलन
8. सरकार पर शिक्षा का उत्तरदायित्व
9. राष्ट्रीय कलेंडर की शुरूआत
10. महिला आन्दोलन

जनतंत्र की स्थापना : फ्रांस की क्रांति ने राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त को समाप्त किया और जनतंत्र की स्थापना की।

व्यक्ति की महत्ता : फ्रांस के नेशनल एसेम्बली ने पहली बार व्यक्ति की महत्ता पर बल दिया। नागरिकों के मौलिक अधिकारों एवं कर्त्तव्यों की घोषणा की गयी।

समाजवाद का प्रारम्भ : फ्रांस की क्रांति ने समाजवादी प्रवृत्तियों को भी बल दिया। जैकोबिन्स ने सामान्य जनता के अधिकारों की रक्षा की एवं अमीरों की जगह गरीबों का पक्ष लिया। उनके राजनैतिक अधिकारों की घोषणा भी की गयी।

वाणिज्य-व्यापार में वृद्धि : क्रांति के फलस्वरूप गिल्ड प्रथा, प्रान्तीय आयात कर तथा अन्य व्यापारिक प्रतिबन्ध व्यापारियों पर से हटा दिए गए, जिससे वाणिज्य एवं व्यापार का विकास हुआ। यही कारण था कि उन्नीसवीं शताब्दी में व्यापार के क्षेत्र में फ्रांस इंगलैंड के बाद द्वितीय स्थान पर था।

दास प्रथा का उन्मूलन : इस क्रांति ने फ्रांस में दास प्रथा का उन्मूलन किया। सन् 1794 में कन्वेंशन ने "दास मुक्ति कानून" पारित किया। यद्यपि आगे चलकर इसे नेपोलियन के द्वारा समाप्त कर दिया गया था। सन् 1848 ई० में अंतिम रूप से फ्रांसीसी उपनिवेशों से दास प्रथा का उन्मूलन किया गया।

सरकार पर शिक्षा का उत्तरदायित्व : फ्रांस में अभी तक चर्च में शिक्षा का प्रबन्ध था। अब इसकी जिम्मेवारी सरकार पर आ गयी। परिणामस्वरूप पेरिस विश्वविद्यालय तथा कई शिक्षण संस्थान एवं शोध संस्थान फ्रांस में खोले गए।

राष्ट्रीय कलेंडर : फ्रांस में एक नया राष्ट्रीय कलेंडर लागू किया गया, जिसको ऋतुओं के आधार पर बारह महीनों में बाँटा गया और उनका नया नाम ब्रुमेयर, थर्मिडार आदि रखा गया।

महिला आन्दोलन : फ्रांस के समाज में परिवर्त्तन लाने के उद्देश्य से फ्रांस की क्रांति में महिलाएँ भी शामिल हुयीं थीं। इन्होंने "द सोसायटी ऑफ रिवलूशनरी एण्ड रिपब्लिकन वीमेन' नामक संस्था का गठन किया, जिसमें ओलम्प दे गूज नामक नेत्री की अहम् भूमिका थी। इनके नेतृत्व में महिलाओं को पुरुषों के समान राजनैतिक अधिकार की मांग को स्वीकार कर लिया गया,

परन्तु राजनैतिक अधिकार शुरू में उन्हें नहीं मिल पाये। फ्रांस की क्रांति ने महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति सजगता का पाठ पढ़ाया, जिसके कारण आगे चलकर वर्षों तक महिला आन्दोलन चलता रहा। परिणामस्वरूप सन् 1946 ई० में फ्रांस की महिलाओं ने मताधिकार प्राप्त करने में सफलता हासिल किया।

3.5 अन्य देशों पर क्रांति का प्रभाव :

अन्य देशों पर प्रभाव
1. इटली पर प्रभाव
2. जर्मनी पर प्रभाव
3. पोलैंड पर प्रभाव
4. इंगलैंड पर प्रभाव

फ्रांस की क्रांति का प्रभाव सिर्फ फ्रांस पर ही नहीं बल्कि यूरोप के अन्य देशों पर भी पड़ा। नेपोलियन फ्रांस में सुधार के कार्यों को करते हुए अपने विजय अभियान के दौरान जब इटली और जर्मनी आदि देशों में पहुँचा, तब उसे वहाँ की जनता भी 'क्रांति का अग्रदूत' कहकर स्वागत किया। उसने इन देशों के नागरिकों को राष्ट्रीयता का संदेश देने का कार्य किया।

इटली पर प्रभाव : इटली इस समय कई भागों में बँटा हुआ था। फ्रांस की इस क्रांति के बाद इटली के विभिन्न भागों में नेपोलियन ने अपनी सेना एकत्रित कर लड़ाई की तैयारी की और 'इटली राज्य' स्थापित किया। एक साथ मिलकर युद्ध करने से उनमें राष्ट्रीयता की भावना आई और इटली के भावी एकीकरण का मार्ग प्रशस्त हुआ।

जर्मनी पर प्रभाव : जर्मनी भी उस समय छोटे-छोटे 300 राज्यों में विभक्त था, जो नेपोलियन के प्रयास से 38 राज्यों में सीमित हो गया। इस क्रांति के 'स्वतंत्रता', 'समानता' एवं 'बन्धुत्व' की भावना को जर्मनी के लोगों ने अपनाया और आगे चलकर इससे जर्मनी के एकीकरण को बल मिला।

पोलैंड पर प्रभाव : फ्रांसीसी क्रांति के अग्रदूत नेपोलियन ने पोलैंड में स्वतंत्रता की लहर फूँकी। पहले यह रूस, प्रशा और आस्ट्रिया के बीच बँटा हुआ था। यद्यपि, पोलैंड को शीघ्र आजादी नहीं मिली, लेकिन उनमें राष्ट्रीयता का संचार इसी क्रांति ने किया। एक लम्बी अवधि के प्रयास के फलस्वरूप प्रथम विश्वयुद्ध के बाद पोलैंड का स्वतंत्र राज्य कायम हो सका।

इंगलैंड पर प्रभाव : नेपोलियन का विजय अभियान इंगलैंड पर भी हुआ, जो आगे चलकर इंगलैंड के पतन का कारण बना। फिर भी इस क्रांति का इतना अधिक असर इंगलैंड में दिखा ही वहाँ की जनता ने भी सामन्तवाद के खिलाफ आवाज उठानी शुरू कर दी। फलस्वरूप, सन् 1832 ई० में इंगलैंड में 'संसदीय सुधार अधिनियम' पारित हुआ, जिसके द्वारा वहाँ के जमींदारों की शक्ति समाप्त कर दी गयी और जनता के लिए अनेक सुधारों का मार्ग प्रशस्त हुआ। भविष्य में, इंगलैंड में औद्योगिक क्रांति के विकास में इस क्रांति का बहुत अधिक योगदान था।

3.6 क्रांति का स्वरूप :

फ्रांसीसी क्रांति के स्वरूप के सम्बन्ध के विषय में कहा जाता है कि यह पूर्णरूप से निश्चयात्मक थी अर्थात् क्रांति की गति और दिशा वही थी जो लगभग सभी क्रांतियों की होती है। फिर भी किसी क्रांति के स्वरूप को निश्चित करने के पहले यह देखना आवश्यक होता है कि उस क्रांति के क्या कारण थे, उस क्रांति में समाज के किस वर्ग के लोगों ने मुख्य रूप से भाग लिया और उस क्रांति से किस वर्ग के लोगों को अधिक लाभ हुआ। कई इतिहासकारों ने सन् 1789 ई० की फ्रांसीसी क्रांति को एक बुर्जुआई (मध्यम वर्गीय) क्रांति कहा है। उनके अनुसार इस क्रांति ने एक विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग की जगह दूसरे विशेषाधिकारी वर्ग का शासन स्थापित कर दिया। फ्रांस में मध्यमवर्ग के पास पूँजी की कमी नहीं थी। ये यदा-कदा सरकार को कर्ज देने का काम भी करते थे, लेकिन सत्ता में इनकी कोई भी सहभागिता नहीं होती थी। यद्यपि फ्रांस की क्रांति के अनेक कारण थे, परन्तु मध्यम वर्ग के असंतोष और इसी वर्ग के द्वारा जनचेतना का जागृत करना क्रांति को अवश्यम्भावी बना दिया। जितने भी दार्शनिक थे, जिन्होंने बौद्धिक चेतना जगाई, सभी मध्यम वर्ग के थे, क्रांति के अधिकांश नेता भी मध्यम वर्ग के थे, जिन्होंने क्रांति का संचालन किया। यह सच है कि मजदूर तथा किसानों ने मिलकर क्रांति को सफल बनाया, लेकिन उसके बाद भी सत्ता उनके हाथ में नहीं आई। 4 अगस्त 1789 को जब नेशनल एसेम्बली द्वारा सामन्तवाद की समाप्ति हुई तो उसके द्वारा अपनायी गयी आर्थिक नीतियों ने स्पष्ट कर दिया कि क्रांति पर बुर्जआ वर्ग हावी हो गया है। इस क्रांति से मध्यम वर्ग को ही लाभ हुआ, साधारण जनता को तो मताधिकार भी नहीं दिया गया। नेशनल एसेम्बली ने एक कानून बना कर मिलों में काम करने वाले मजदूरों के संगठन पर प्रतिबन्ध लगा दिया। क्रांति का नारा 'स्वतंत्रता', 'समानता' एवं 'बन्धुत्व' का प्रयोग पादरियों तथा सामन्तों के विशेषाधिकारों को समाप्त करने एवं मध्यम वर्ग के लोगों के लिए विशेष सुविधाएँ प्राप्त करने के लिए था। सन् 1789 ई० से 1815 तक शासन पर मध्यम वर्ग का ही अधिकार रहा। यही कारण था कि जैकोबिन दल ने 'आतंक का राज्य' स्थापित कर सर्वहारा वर्ग को राजनैतिक तथा आर्थिक अधिकार दिलाने का अस्थाई प्रयास किया था। उपरोक्त तथ्यों को देखते हुए इतिहासकारों की यह बात तथ्यपरक प्रतीत होती है कि फ्रांस की क्रांति का स्वरूप मध्यवर्गीय था, क्योंकि मध्यमवर्ग के लोग ही इसके विशेष्य कारण के रूप में थे, क्रांति का नेतृत्व भी इन्होंने ही किया, और सर्वाधिक लाभ भी इसी वर्ग को प्राप्त हुआ।

निष्कर्षतः, सन् 1789 की फ्रांस की क्रांति ने फ्रांस में एक ऐसे युग का सूत्रपात किया जिसमें 'स्वतंत्रता', 'समानता' एवं 'बन्धुत्व' की नींव पड़ी तथा मानवाधिकारों की रक्षा हुई। साथ ही यूरोप के अन्य देश भी इन विचारों से प्रभावित हुए और वहाँ भी सुधारों के एक नये युग का सिलसिला शुरू हुआ।

अभ्यास :

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. फ्रांस की राजक्रांति किस ई0 में हुई?

(क) 1776 (ख) 1789

(ग) 1776 (घ) 1832

2. बैस्टिल का पतन कब हुआ?

(क) 5 मई 1789 (ख) 20 जून 1789

(ग) 14 जुलाई 1789 (घ) 27 अगस्त 1789

3. प्रथम एस्टेट में कौन आते थे?

(क) सर्वसाधारण (ख) किसान

(ग) पादरी (घ) राजा

4. द्वितीय एस्टेट में कौन आते थे?

(क) पादरी (ख) राजा

(ग) कुलीन (घ) मध्यमवर्ग

5. तृतीय एस्टेट में इनमें से कौन थे?

(क) दार्शनिक (ख) कुलीन

(ग) पादरी (घ) न्यायाधीश

6. वोल्टेयर क्या था?

(क) वैज्ञानिक (ख) गणितज्ञ

(ग) लेखक (घ) शिल्पकार

7. रूसो किस सिद्धान्त का समर्थक था?

(क) समाजवाद (ख) जनता की इच्छा (General Will)

(ग) शक्ति पृथक्करण (घ) निरंकुशता

8. मांटेस्क्यू ने कौन-सी पुस्तक लिखी?

(क) सामाजिक संविदा (ख) विधि की आत्मा

(ग) दास कैपिटल (घ) वृहत ज्ञानकोष

9. **फ्रांस की राजक्रांति के समय वहाँ का राजा कौन था?**

(क) नेपोलियन　　(ख) लुई XIV

(ग) लुई XVI　　(घ) मिराब्यो

10. **फ्रांस में स्वतंत्रता दिवस कब मनाया जाता है?**

(क) 4 जुलाई　　(ख) 14 जुलाई

(ग) 27 अगस्त　　(घ) 31 जुलाई

II. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

1. लुई XVI सन् .... ई० में फ्रांस की गद्दी पर बैठा।
2. .... लुई XVI की पत्नी थी।
3. फ्रांस की संसदीय संस्था को .... कहते थे।
4. ठेका पर टैक्स वसूलने वाले पूँजीपतियों को .... कहा जाता था।
5. .... के सिद्धान्त की स्थापना मांटेस्क्यू ने की।
6. .... की प्रसिद्ध पुस्तक 'सामाजिक संविदा' है।
7. 27 अगस्त 1789 को फ्रांस की नेशनल एसेम्बली ने .... की घोषणा थी।
8. जैकोबिन दल का प्रसिद्ध नेता .... था।
9. दास प्रथा का अंतिम रूप से उन्मूलन .... ई० में हुआ।
10. फ्रांसीसी महिलाओं को मतदान का अधिकार सन् .... ई० में मिला।

III. लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. फ्रांस की क्रांति के राजनैतिक कारण क्या थे?
2. फ्रांस की क्रांति के सामाजिक कारण क्या थे?
3. क्रांति के आर्थिक कारणों पर प्रकाश डालें।
4. फ्रांस की क्रांति के बौद्धिक कारणों का उल्लेख करें।

5. 'लेटर्स-डी-कैचेट'' से आप क्या समझते हैं?
6. अमेरीका के स्वतंत्रता संग्राम का फ्रांस की क्रांति पर क्या प्रभाव पड़ा?
7. 'मानव एवं नागरिकों के अधिकार से' आप क्या समझते हैं?
8. फ्रांस की क्रांति का इंग्लैंड पर क्या प्रभाव पड़ा?
9. फ्रांस की क्रांति ने इटली को प्रभावित किया, कैसे?
10. फ्रांस की क्रांति से जर्मनी कैसे प्रभावित हुआ?

IV. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. फ्रांस की क्रांति के क्या कारण थे?
2. फ्रांस की क्रांति के परिणामों का उल्लेख करें।
3. फ्रांस की क्रांति एक मध्यमवर्गीय क्रांति थी, कैसे?
4. फ्रांस की क्रांति में वहाँ के दार्शनिकों का क्या योगदान था?
5. फ्रांस की क्रांति की देनों का उल्लेख करें।
6. फ्रांस की क्रांति ने यूरोपीय देशों को किस तरह प्रभावित किया।
7. 'फ्रांस की क्रांति एक युगान्तरकारी घटना थी' इस कथन की पुष्टि करें।
8. फ्रांस की क्रांति के लिए लुई XVI किस तरह उत्तरदायी था?
9. फ्रांस की क्रांति में जैकोबिन दल की क्या भूमिका थी ?
10. नेशनल एसेम्बली और नेशनल कन्वेंशन ने फ्रांस के लिए कौन-कौन से सुधार पारित किए।

इकाई-4

विश्व युद्धों की इतिहास

प्रथम विश्वयुद्ध (1914-1918) :

विश्व इतिहास में 1914 का वर्ष एक ऐसे युद्ध के लिए उल्लेखनीय है, जिसने सम्पूर्ण विश्व को अपनी आगोश में ले लिया और युद्धरत देशों ने अपने सम्पूर्ण संसाधन इसमें झोंक दिए। विश्व के लगभग तमाम देश इससे प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित हुए। इस युद्ध ने कई देशों के राजनैतिक, आर्थिक स्थिति और नक्शा बदल दिए। इस युद्ध के कारणों को निम्नलिखित रूप में खोजा जा सकता है–

साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्धा :

औद्योगिक क्रांति के बाद से ही बाजारों के विस्तार के लिए उपनिवेशों के निर्माण की प्रक्रिया शुरू हो गयी थी। ऐसे में पूर्व के साम्राज्यवादी आधिपत्य को चुनौती दिए बिना नए औपनिवेशिक क्षेत्र का निर्माण संभव नहीं था। इस दौड़ में जर्मनी और इटली का प्रवेश बहुत बाद में हुआ। इस कारण उन्हें कम ही उपनिवेश हाथ लगे लेकिन उनकी साम्राज्यवादी लिप्सा रुकने का नाम नहीं ले रही थी। 1914 ई० तक जर्मनी औद्योगिक क्षेत्र में काफी प्रगति कर चुका था। वह ब्रिटेन और फ्रांस को भी काफी पीछे छोड़ चुका था। जर्मनी को भी उद्योग के लिए कच्चे माल और फिर तैयार माल के लिए बाजार की आवश्यकता थी। किन्तु एशिया और अफ्रिका के अधिकांश हिस्से को पुराने साम्राज्यवादी देश आपस में बाँट चुके थे। ऐसी परिस्थिति में जर्मन साम्राज्यवादियों ने पतनशील तुर्की साम्राज्य की अर्थव्यवस्था पर अपना नियंत्रण करना चाहा। इसके लिए जर्मनी ने तुर्की के सुल्तान से बर्लिन से बगदाद तक रेलवे लाइन बिछाने की योजना पर स्वीकृति चाही। जर्मनी की इस योजना का फ्रांस तथा रूस ने विरोध किया।

इधर 1905 के रूस-जापान युद्ध में जापान के विजय से जापान की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा और परवान चढ़ने लगी थी। उन्नीसवीं शताब्दी के अंत तक अमेरिका भी एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में उभर कर सामने आ चुका था और वह व्यापार की स्वतंत्रता बनाए रखने में दिलचस्पी ले रहा था, दूसरी ताकत के उभरने से उसके हितों को खतरा था।

उग्र राष्ट्रवाद :

19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक यूरोप के देशों में राष्ट्रीयता का संचार उग्र रूप से होने लगा। समान जाति, धर्म, भाषा और ऐतिहासिक परम्परा के लोग एक साथ मिलकर अलग देश का निर्माण चाहने लगे। तुर्की साम्राज्य तथा ऑस्ट्रिया-हंगरी में अधिकांश निवासी स्लाव जाति के थे। उनलोगों ने सर्वस्लाव आन्दोलन की शुरूआत की जो इस सिद्धान्त पर आधारित था कि यूरोप के सभी स्लाव जाति के लोग एक राष्ट्र हैं। इसने ऑस्ट्रिया-हंगरी का रूस के साथ सम्बंध कटु बना दिया। इसी तरह सर्वजर्मन आन्दोलन शुरू हुआ जिसका लक्ष्य बाल्कन प्रायद्वीप में जर्मन साम्राज्य का विस्तार था। इस प्रकार उग्र राष्ट्रवाद ने यूरोप के देशों के आपसी सम्बन्ध को तनावग्रस्त बना दिया।

सैन्यवाद :

यूरोपीय देश अपनी सैनिक शक्ति पर सारा ध्यान केन्द्रित कर रहे थे। फ्रांस, जर्मनी आदि प्रमुख यूरोपीय देश अपनी राष्ट्रीय आय का लगभग 85% सैनिक तैयारियों पर व्यय कर रहे थे। 1913-14 ई० में फ्रांस के पास लगभग 8 लाख, जर्मनी में 7 लाख 60 हजार और रूस में 15 लाख की स्थायी सेना थी। जल सेना के क्षेत्र में शुरू से ही इंगलैंड का आधिपत्य था, जर्मनी ने इसको चुनौती के रूप में लिया और इंगलैंड को नीचा दिखाने के लिए जहाजी बेड़ा बनाना शुरू किया । 1912 में जर्मनी ने इम्परेटर नामक जहाज बनाया जो उस समय का सबसे बड़ा जहाज था । इस प्रकार जर्मनी, इंगलैंड के बाद दूसरा शक्तिशाली राष्ट्र बन गया।

गुटों का निर्माण :

साम्राज्यवादी लिप्सा के शिकार शक्तिशाली देश अपने-अपने हितों के अनुरूप गुटों का निर्माण करने लगे थे। एक समान स्वार्थ को केन्द्र में रखकर राष्ट्र रणनीति तय करने लगे थे। परिणामस्वरूप सम्पूर्ण यूरोप गुटों में बँट गया। यूरोप धीरे-धीरे सैनिक शिविर का रूप लेते जा रहा था। यूरोप में यह प्रक्रिया उन्नीसवीं शताब्दी से ही जारी थी। यूरोप में गुटबन्दी का

जन्मदाता जर्मनी के चांसलर बिस्मार्क को माना जाता है। उसने सन् 1879 में ऑस्ट्रिया के साथ द्वैध संधि की। 1882 ई० में एक त्रिगुट (ट्रिपल एलांयस) बना जिसमें जर्मनी, ऑस्ट्रिया-हंगरी और इटली शामिल हुए। यह त्रिगुट बिस्मार्क ने फ्रांस के विरुद्ध बनाई थी। यद्यपि इटली की विश्वसनीयता संदिग्ध थी, क्योंकि उसका मुख्य उद्देश्य यूरोप में ऑस्ट्रिया-हंगरी से कुछ इलाके छीनना और फ्रांस की सहायता से त्रिपोली को जीतना था। इस त्रिगुट के विरोध में फ्रांस, रूस और ब्रिटेन ने 1907 ई० में एक त्रिदेशीय संधि (ट्रिपल एतॉत) बनाई। यह सामान्य हितों और समझदारी पर आधारित ढीला-ढाला गठजोड़ था। इन दोनों गुटों की उपस्थिति ने युद्ध की भयावहता को तय कर दिया।

घटनाक्रम :

1914 ई० में प्रारंभ हुए प्रथम विश्वयुद्ध के पूर्व के वर्षों में इस तरह से घटनाएँ घटित हो रही थी, जैसे- मोरक्को का प्रश्न हो या बाल्कन प्रायद्वीप का मुद्दा ये सभी युद्ध को निकट लाने का कार्य कर रहे थे। 1904 ई० में आपसी समझौते के फलस्वरूप ब्रिटेन को मिस्र में उपनिवेश स्थापित करने की छूट मिली और फ्रांस को मोरक्को प्राप्त हुआ। इससे जर्मनी को बड़ा क्षोभ हुआ। जर्मनी, मोरक्को की स्वतंत्रता की दुहाई दे रहा था और फ्रांस अपने हित के आगे अंधा बना हुआ था। 1911 ई० में फ्रांस ने मोरक्को के अधिकांश भाग पर अधिकार कर लिया।

1904 ई० में ऑस्ट्रिया ने तुर्की पर अपना अधिकार जमा लिया। इस क्षेत्र को सर्विया भी लेना चाहता था। वह बाल्कन क्षेत्र में एक संयुक्त स्लाव राज्य कायम करना चाहता था। इसके लिए उसे रूस का समर्थन प्राप्त था। रूस ने आस्ट्रिया को युद्ध छेड़ने की धमकी दी। इस पर जर्मनी खुलकर आस्ट्रिया के पक्ष में आ गया। अंतत: रूस को पीछे हटना पड़ा, लेकिन इस घटना से रूस और जर्मनी में कटुता और बढ़ी। साथ ही जर्मनी, फ्रांस के प्रति भी उतना ही विषाक्त था। जर्मनी का चांसलर विस्मार्क फ्रांस को पंगु बना देना चाहता था। उसने फ्रांस के धनी प्रदेश **अल्सास** तथा **लारेन** पर अपना अधिकार कर लिया था। जर्मनी ने मोरक्को में भी फ्रांस का डटकर विरोध किया था। फलत: यह खाई बढ़ती गयी और इसने विश्वयुद्ध को और नजदीक किया।

युद्ध की शुरूआत :

युद्ध की शुरूआत एक मामूली घटना से हुई। अगर सम्पूर्ण यूरोप गुटों में न बँटा होता और कटुता एवं विद्वेष का माहौल पहले से व्याप्त न होता तो शायद यह घटना नहीं हो पाती। **28 जून 1914** को आर्क ड्यूक फर्डिनेण्ड की बोस्निया की राजधानी साराजेवो में हत्या हो गई। ऑस्ट्रिया ने इस घटना के लिए सर्बिया को जिम्मेवार ठहराया और सर्बिया के समक्ष माँगें रखीं। सर्बिया ने स्वीकार करने से इनकार कर दिया क्योंकि इसे वह स्वतंत्रता पर कुठाराघात समझता था। फलतः 28 जुलाई 1914 को ऑस्ट्रिया ने सर्बिया के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। रूस ने सर्बिया को पूर्ण सहायता का वचन दिया और युद्ध की तैयारी करने लगा। जर्मनी ने 1 अगस्त 1914 को रूस और 3 अगस्त 1914 को फ्रांस के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। फ्रांस पर दबाव डालने के लिए जर्मन सेनाएँ 4 अगस्त को बेल्जियम में घुस गईं। उसी दिन ब्रिटेन ने जर्मनी के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी और इस तरह यह व्यापक रूप धारण करने लगा। इसी क्रम में दूसरे देश भी लड़ाई में शामिल होते गये। जापान ने सुदूर-पूर्व में जर्मनी के उपनिवेश हथियाने के उद्देश्य से जर्मनी के खिलाफ यृद्ध की घोषणा कर दी। तुर्की और बुल्गारिया जर्मनी की तरफ हो गए। त्रिगुट का सदस्य होने के बावजूद इटली कुछ समय तक तटस्थ रहा, अंततः वह भी जर्मनी और ऑस्ट्रिया-हंगरी के खिलाफ युद्ध में शामिल हो गया। इस प्रकार आर्क ड्यूक **फर्डिनेण्ड** की हत्या युद्ध के तात्कालिक कारण के रूप में सामने आया।

युद्ध का अंत और शांति-संधियाँ :

1917 ई० में एक और महत्वपूर्ण घटना घटी, वह था रूस का युद्ध से अलग हो जाना। अब तक रूस के 6 लाख से अधिक सैनिक मारे जा चुके थे। रूस की अर्थव्यवस्था भी अत्यन्त दयनीय हो गई थी। बोल्शेविक सरकार के सत्ता में आते ही, इसके नेता **लेनिन** ने एक विज्ञप्ति जारी की, जिसमें दूसरे के क्षेत्रों को हथियार बिना और युद्ध के हर्जाने लिए बिना शांति स्थापित करने के प्रस्ताव रखे गये थे। यद्यपि ये शर्तें और युद्ध से रूस का हटना, उसकी अपनी आंतरिक व्यवस्था की अपरिहार्यता थी, लेकिन जर्मनी ने इसे रूस की कमजोरी माना और कुछ मुश्किल शर्तें रूस के समक्ष रख दिया। इसके बावजूद भी रूस इसे स्वीकार कर युद्ध से हट गया। मार्च 1918 में रूस-जर्मनी में एक शांति-संधि हुई और रूस युद्ध से पूर्णतः अलग हो गया।

रूस का युद्ध से हट जाने के बाद युद्ध समाप्ति की आवाजें उठने लगीं। युद्धरत देशों ने प्रकटत: तो अपनी इच्छा नहीं जाहिर की, लेकिन इन देशों की जनता ने युद्ध के खिलाफ आवाज उठाना शुरू कर दिया। जगह-जगह सैनिक विद्रोह होने लगे, रूस की नई सरकार से पूरे विश्व में आम जनता का मनोबल ऊँचा हुआ। युद्धरत देश की जनता अपनी ही सरकार के खिलाफ आवाज उठाने लगी। जर्मनी के यू नौका नामक पनडुब्बियों ने ब्रिटिश बन्दरगाह की तरफ जाने वाले जहाजों को डुबोना शुरू किया जिसमें 'लुसीतानिया' नामक जहाज को डुबाने से अमेरिका में प्रतिक्रिया हुई क्योंकि उसमें अमेरिकी नागरिक सवार थे। अमेरिका के मना करने पर भी जब जर्मनी ने अपनी कार्यवाही नहीं रोकी तब अमेरिका ने 6 अप्रैल 1917 को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी। अमेरिका के युद्ध में शामिल होने से युद्ध की स्थिति ही बदल गई। जुलाई 1918 में ब्रिटेन, फ्रांस और अमेरिका ने संयुक्त सैनिक अभियान आरंभ किया और जर्मनी तथा उसके सहयोगी देशों की हार होने लगी। बुल्गारिया सितम्बर में युद्ध से अलग हो गया। अक्टूबर में तुर्की ने आत्मसमर्पण कर दिया। ऑस्ट्रिया-हंगरी और जर्मनी में राजनीतिक असंतोष बढ़ रहा था। 3 नवम्बर 1918 को ऑस्ट्रिया तथा हंगरी के सम्राट ने आत्मसमर्पण कर दिया। जर्मनी में एक क्रांति फूट पड़ी और जर्मनी एक गणराज्य बन गया। जर्मन सम्राट कैसर विलियम द्वितीय पलायन कर हालैंड चल गया। नई जर्मन सरकार ने 11 नवम्बर 1918 को युद्ध विराम संधि पर हस्ताक्षर किए और इस प्रकार युद्ध समाप्त हो गया।

ऐसे में अमेरिका के राष्ट्रपति **वुडरो विल्सन** ने जनवरी 1918 में शांति का एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया, जो चौदह सूत्रों के नाम से चर्चित हुआ। इसमें राज्यों के बीच खुली बातचीत चलाना, जहाजरानी की स्वतंत्रता, हथियारों में कमी, बेल्जियम की स्वतंत्रता, फ्रांस को अल्सास तथा लॉरेन की वापसी, यूरोप में स्वतंत्र राज्यों की स्थापना, सभी राज्यों की स्वतंत्रता की जमानत के लिए अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना जैसी बातें शामिल थीं। इस प्रकार शांति-संधि में विल्सन के कुछ सूत्रों को शामिल किया गया।

वर्साय की संधि :

जनवरी और जून 1919 के बीच विजयी शक्तियों (मित्र राष्ट्रों) का एक सम्मेलन पेरिस के उपनगर वर्साय में और फिर पेरिस में हुआ। हालाँकि इस सम्मेलन में 27 देश भाग ले रहे थे, लेकिन तीन देश **ब्रिटेन**, **फ्रांस** और **अमेरिका** ही निर्णायक भूमिका निभा रहे थे। अमेरिका के राष्ट्रपति वुडरो विल्सन, ब्रिटेन के प्रधानमंत्री लायड जार्ज और फ्रांस के प्रधानमंत्री

जार्ज क्लीमेंशु, ये ही तीन प्रमुख व्यक्ति थे जो शांति-संधि की शर्तें तय कर रहे थे और पराजित राष्ट्रों के मत्थे इसे मढ़ रहे थे। सम्मेलन में पराजित राष्ट्रों को कोई महत्व नहीं दिया गया। रूस को भी इस शांति-संधि प्रक्रिया से बाहर रखा गया। मुख्य संधि जर्मनी के साथ 28 जून 1919 को हुई। इसे **वर्साय की संधि** के नाम से जाना जाता है। पराजित जर्मनी को संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया गया। संधि में जर्मनी को युद्ध का जिम्मेवार बताया गया। फ्रांस को अल्सास-लारेन का क्षेत्र वापस दे दिया गया। जर्मनी की सार क्षेत्र की कोयला खदानों को 15 वर्ष के लिए फ्रांस को दे दिया गया तथा इसका प्रशासन राष्ट्रसंघ के अधीन कर दिया गया। जर्मनी को अपने युद्धपूर्व क्षेत्र का कुछ भाग डेनमार्क, बेल्जियम, पोलैंड और चेकोस्लोवाकिया को भी देना पड़ा। राइन नदी की घाटी क्षेत्र को सेनारहित करने का फैसला किया गया। संधि के तहत जर्मनी की सेना 1 लाख तक सीमित कर दी गयी। उससे वायुसेना और पनडुब्बियाँ रखने के अधिकार छीन लिये गए। जर्मनी के सारे उपनिवेश विजित राष्ट्रों ने आपस में बाँट लिये। टोगा और कैमरून को ब्रिटेन और फ्रांस ने आपस में बाँट लिया। दक्षिण-पश्चिम अफ्रिका और पूर्वी अफ्रिका में स्थित जर्मन उपनिवेश ब्रिटेन, बेल्जियम, दक्षिण अफ्रिका और पुर्त्तगाल को दे दिए गए। प्रशांत क्षेत्र में स्थित उसके उपनिवेश तथा चीन में उसके सारे अधिकार क्षेत्र जापान को दे दिए गए। युद्ध के दौरान चीन मित्र राष्ट्रों का सहयोगी था और पेरिस सम्मेलन में उसका प्रतिनिधि भी शामिल हुआ था। परन्तु जर्मनी के अधिकार या नियंत्रण करने वाले चीनी क्षेत्र चीन को नहीं लौटाए गए बल्कि वे जापान को दे दिए गए। युद्ध में मित्र राष्ट्रों को जो हानि एवं क्षति हुई थी, उसका हर्जाना भी जर्मनी को भरना था। इसके लिए 6 अरब 10 करोड़ पौंड की भारी रकम निश्चित की गई।

वर्साय की संधि

जर्मनी के सहयोगियों के साथ अलग से संधियाँ की गईं। ऑस्ट्रिया-हंगरी को विभाजित कर दिया गया। ऑस्ट्रिया से कहा गया कि वह हंगरी, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया और पोलैंड की स्वाधीनता को मान्यता दे। उसे अपने क्षेत्र भी इन देशों को और इटली को देने पड़े। बाल्कन क्षेत्र में अनेक परिवर्त्तन किए गए। अनेक राज्य बनाए गए और उनके बीच भू-भागों का हस्तांतरण किया गया। बाल्टिक राज्य, जो रूसी साम्राज्य के भाग थे, स्वतंत्र घोषित कर दिए गए। तुर्की के साथ की गई संधि में तुर्की साम्राज्य को पूरी तरह छिन्न-भिन्न कर दिया गया। ब्रिटेन को फिलिस्तीन और मेसोपोटामिया (इराक) दे दिए गए और फ्रांस को सीरिया दे दिया गया। क्षेत्रों और देशों का यह हस्तांतरण जिस व्यवस्था के तहत् किया गया उसे शासन-देश (मैंडेट) व्यवस्था कहा जाता है। सिद्धान्त रूप में 'शासनदेश (मैंडेट), जाने वाली शक्तियाँ अर्थात् ब्रिटेन और फ्रांस को इन देशों का शासन चलाना था। वास्तव में उनका शासन उपनिवेशों की तरह किया जाने लगा। तुर्की के क्षेत्र का अधिकांश भाग यूनान और इटली को दे दिया गया और खुद तुर्की को एक छोटा सा राज्य बनाने का निर्णय लिया गया।

इन शांति-संधियों का एक प्रमुख अंग था राष्ट्रसंघ (लीग ऑफ नेशंस) का प्रसंविदा। अमेरिका के राष्ट्रपति वुड्रो विल्सन के चौदह सूत्री सिद्धान्त में इसकी चर्चा थी। इसके उद्देश्य थे-शांति और सुरक्षा बनाए रखना, अन्तर्राष्ट्रीय झगड़ों का शांतिपूर्ण निपटारा करना और सदस्य देशों को "युद्ध का सहारा न लेने के लिए" बाध्य करना। इसका एक महत्वपूर्ण प्रावधान प्रतिबंधों से संबंधित था। इसके अनुसार किसी भी आक्रमणकारी देश के खिलाफ आर्थिक और सैनिक कार्रवाई करना शामिल था। इसके प्रावधानों में सदस्य राष्ट्रों के श्रमिकों की दशा और सामाजिक स्थिति को सुधारने के उपायों को शामिल किया गया।

युद्ध और शांति-संधियों के परिणाम :

अब तक के हुए युद्धों में प्रथम विश्वयुद्ध सबसे भयावह था और इसकी व्यापकता और बर्बादी त्रासदपूर्ण थी। विभिन्न अनुमानों के अनुसार लगभग 45 करोड़ लोग इस विश्वयुद्ध से प्रभावित हुए। लड़ाई में या अन्यथा मरने वालों की संख्या 90 लाख बतलाई जाती है, जो युद्ध में भाग लेने वालों की संख्या का लगभग सातवाँ भाग है। लाखों लोग अपंग हो गए। हवाई हमलों, अकालों और महामारियों से भारी संख्या में असैनिक लोग मारे गए। विभिन्न देशों की राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई। इससे अनेक सामाजिक समस्याएँ खड़ी हुईं।

नयी राजनीतिक-व्यवस्था का उदय :

प्रथम विश्वयुद्ध और इसके बाद सम्पन्न शांति-संधियों ने अनेक देशों की राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्त्तन किया। कई राजतंत्र नष्ट हो गए, कई देशों में लोकतांत्रिक व्यवस्था का उदय हुआ एवं नई साम्यवादी सरकार से विश्व-जनमत रू-ब-रू हुआ। तीन शासक वंश नष्ट हो गए यथा-रूस का रोमानोव शासन, जर्मनी का होहेनजोलर्न और ऑस्ट्रिया-हंगरी में हेब्सबर्ग के शासक-वंश समाप्त हो गए। युद्ध के कुछ ही समय बाद तुर्की में उस्मानिया वंश का शासन समाप्त हो गया। ऑस्ट्रिया और हंगरी दो अलग-अलग स्वतंत्र राज्य बन गए। चेकोस्लोवाकिया और युगोस्लाविया स्वतंत्र देशों के रूप में उभरे। पोलैंड स्वतंत्र देश के रूप में सामने आया।

यूरोप का वर्चस्व समाप्त हुआ और संयुक्त राज्य अमेरिका विश्व शक्ति बनकर उभरा। वह सैनिक और आर्थिक दृष्टि से यूरोप को पीछे छोड़ दिया। कुछ ही समय बाद विश्व-रंगमंच पर सोवियत रूस भी विश्व-शक्ति के रूप में सामने आया। एशिया और अफ्रीका के देशों में चल रहे स्वाधीनता आंदोलन को भी बल मिला।

यूरोप की श्रेष्ठता का दावा, इस युद्ध से धुमिल हुई क्योंकि साम्राज्यवादी यूरोप सदैव इस प्रचार को हवा देता था कि यूरोप और यूरोपीय लोग श्रेष्ठ हैं। रूस-जापान का 1905 का युद्ध और इसमें रूस की पराजय से भी यह मिथक टूटा, साथ ही एशिया और अफ्रीका के देशों में स्वाधीनता आंदोलन तीव्र हुए।

द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि तैयार

प्रथम विश्वयुद्ध की भयावहता और व्यापकता से लोग आक्रांत थे। सभी राष्ट्र भविष्य में ऐसे किसी युद्ध की कल्पना से बचना चाहते थे। इसके लिए अन्तर्राष्ट्रीय संगठन भी बनाया गया। लेकिन वर्साय और पेरिस की संधियों ने अगले विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि तैयार कर दी थी। जिस तरह से पराजित राष्ट्रों पर निर्णय थोपे गये थे, उनका अपमान किया गया था, इससे यही स्पष्ट था कि अगला विश्वयुद्ध होकर रहेगा। यद्यपि इतना शीघ्र इसकी शुरूआत हो जाएगी, इसकी कल्पना शायद किसी को नहीं थी। प्रथम विश्वयुद्ध साम्राज्यवाद को समाप्त नहीं कर सका, बल्कि इसकी समाप्ति के उपरांत जो समझौते हुए उससे साम्राज्यवाद का वेग और प्रचंड हुआ। यद्यपि युद्ध को रोकने के लिए 'राष्ट्रसंघ' नामक अंतर्राष्ट्रीय संस्था की स्थापना की गई परन्तु यह अपनी आरम्भिक छोटी-मोटी सफलताओं के बावजूद भी युद्ध को रोकने में सफल नहीं हो सका।

द्वितीय विश्वयुद्ध (1939-1945) :

पेरिस के शांति समझौते से असंतुष्ट राज्यों ने 1936 के अंत तक इस व्यवस्था के अन्तर्गत अपने कर्त्तव्यों से स्वयं को मुक्त कर लिया था। अब वे अपनी क्षति-पूर्ति का दावा कर रहे थे, जिसका अर्थ क्षति-पूर्ति न होने पर केवल युद्ध ही हो सकता था। इस खतरे के कारण ब्रिटिश सरकार जो अपनी ओर से निःशस्त्रीकरण करके एक उदाहरण प्रस्तुत करना चाहती थी, ऐसा करने का इरादा छोड़ दिया और प्रतिरक्षा के नाम पर सशस्त्रीकरण में जुट गयी। राष्ट्रसंघ इन तमाम घटनाओं का मौन और मूक साक्षी बना रहा और अंततः वह घड़ी आ ही गयी। द्वितीय विश्वयुद्ध के कारणों की चर्चा के क्रम में प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति और पेरिस संधि से लेकर 1939 तक के घटनाक्रम का उल्लेख प्रासंगिक होगा, जिसकी अपरिहार्य परिणति के रूप में द्वितीय विश्वयुद्ध हुआ।

वर्साय संधि की विसंगतियाँ :

द्वितीय विश्वयुद्ध का बीजारोपण वर्साय संधि में ही हो गया था। पेरिस शांति सम्मेलन में ही सिद्धान्त की बातों को विजित राष्ट्र गुप्त संधियों के माध्यम से झुठलाते भी रहे। सोवियत रूस ने गुप्त संधि की शर्त्तों का भंडाफोड़ कर जहाँ एक ओर विजित राष्ट्रों की हकीकत को उजागर किया वहीं पराजित राष्ट्र सत्य से परिचित हो बौखलाहट से भर गए।

वचन विमुखता :

राष्ट्रसंघ के विधान पर हस्ताक्षर कर सभी सदस्य-राज्यों ने वादा किया था कि वे सामूहिक रूप से सबकी प्रादेशिक अखंडता और राजनीतिक स्वतंत्रता की रक्षा करेंगे। अवसर आने पर सब समर्थ राष्ट्र पीछे हटते गये, रूस को सदस्य नहीं बनाया गया था, अमेरिका सदस्य बनने से इनकार कर दिया था। चीन, जापान की साम्राज्यवादी नीतियों का शिकार होता रहा और इटली अबीसीनिया को रौंदता रहा। फ्रांस, चेकोस्लोवाकिया के विनाश में सहायक हुआ। हिटलर चेक राज्यों को हड़पता रहा और ब्रिटेन तथा फ्रांस देखते रहे। धोखेबाजी की नीति से आक्रामक-प्रवृत्तियों को काफी प्रोत्साहन मिला। जापान ने चीन पर आक्रमण कर मंचूरिया पर अधिकार कर लिया। अबिसीनिया मुसोलिनी की आक्रामक नीति का शिकार हुआ। मुसोलिनी का सफलता प्राप्त करते देख हिटलर ने आस्ट्रिया और चेकोस्लोवाकिया पर धावा बोल दिया। उसने पोलैंड पर भी चढ़ाई कर दी और इसके साथ ही द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ हो गया।

गृहयुद्ध :

गुटबंदी और सैनिक संधियाँ भी द्वितीय विश्वयुद्ध के लिए जिम्मेवार थीं। शांति बनाए रखने के नाम पर यूरोप में अनेक संधियाँ हुईं। जिसके परिणामस्वरूप यूरोप पुनः दो गुटों में बँट गया। एक गुट का नेता जर्मनी बना और दूसरा गुट का नेता फ्रांस बना। इस गुटबंदी के पीछे सैद्धान्तिक समानता और हितों की एकता थी। इटली, जापान और जर्मनी एक सिद्धान्त फासिज्म में विश्वास रखते थे और उनकी नीति भी समान रूप से-प्रसारवादी थी। ये राष्ट्र वर्साय की संधि से क्षुब्ध थे और हर हाल में थोपी गई शर्त्तों से मुक्ति चाहते थे। इसके विपरीत फ्रांस, चेकोस्लोवाकिया, पोलैंड इत्यादि देशों के हित एक थे, क्योंकि उन्हें वर्साय की संधि से बहुत लाभ हुआ था और ये हर हाल में उसे कायम रखना चाहते थे। इंगलैंड शुरू में इस गुट में शामिल नहीं था, लेकिन परिस्थितिवश उसे भी इस गुट में सम्मिलत होना पड़ा। रूस तब तक अछूता था, दोनों गुट उसे संदेह की नजरों से देखते थे, लेकिन परिस्थितिवश जर्मनी ने रूस की ओर हाथ बढ़ाया। इस तरह गुटबंदी से सम्पूर्ण यूरोप का माहौल विषाक्त हो गया था। विषाक्त माहौल में शंका के लिए हर छोटी बात महत्वपूर्ण थी।

हथियारबंदी :

गुटबंदी और संशय के माहौल में प्रत्येक राष्ट्र अपने को असुरक्षित महसूस कर रहे थे। परिणामस्वरूप सशस्त्रीकरण को बढ़ावा मिला। ब्रिटिश सरकार, जो नि:शस्त्रीकरण का उदाहरण पेश करना चाहती थी, के वित्त मंत्री **चेम्बरलिन** ने मार्च 1937 में घोषणा की कि प्रतिरक्षा व्यय की पूर्त्ति अब केवल कर लगाकर नहीं की जाएगी। उसने इस प्रयोजन के लिए चालीस करोड़ पौंड का ऋण लेने तथा पाँच वर्ष की अवधि में प्रतिरक्षा पर डेढ़ अरब पौंड व्यय करने का प्रस्ताव किया। प्रधानमंत्री बाल्डविन ने इन प्रस्तावों का समर्थन यह कह कर किया था कि उनका उद्देश्य आक्रमण को रोकना है। प्रत्येक देश का रक्षा बजट बढ़ रहा था और नए-नए हथियारों से प्रत्येक राष्ट्र अपनी सेना को सुसज्जित कर रहा था। नौ-सेना और वायु सेना पर जोर दिया जाने लगा था। इस सैनिक तैयारी ने असुरक्षा की भावना का संचार किया।

राष्ट्रसंघ की असफलता :

राष्ट्रसंघ की भ्रामक शक्तियाँ और सदस्य-राष्ट्रों के सहयोग का अभाव भी द्वितीय विश्वयुद्ध का कारण बना। राष्ट्रसंघ ने छोटे-छोटे राज्यों के मामलों को आसानी से सुलझा दिया, लेकिन बड़े राष्ट्रों के मामले में उसने अपने को अक्षम पाया और अंतत: उसको इस कार्य के लिए समर्थ और शक्तिशाली राष्ट्रों का सहयोग नहीं मिला। हर निर्णायक कार्रवाई की घड़ी में शक्तिशाली राष्ट्रों ने अपने निहित स्वार्थ में हाथ खड़ा कर लिए। इस प्रकार राष्ट्रसंघ की असफलता ने द्वितीय विश्वयुद्ध का मार्ग प्रशस्त कर दिया।

विश्वव्यापी आर्थिक-मंदी :

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद 1929-30 के काल में विश्वव्यापी आर्थिक मंदी आया। इससे उद्धार का कोई रास्ता निकट भविष्य में दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था। 1931 में यह अपनी चरम सीमा पर पहुँच गया था। 1929 के शरद काल में अमेरिका से यूरोप को ऋण मिलना बिल्कुल बंद हो जाना इस संकट की प्रथम अन्तर्राष्ट्रीय अभिव्यक्ति थी। इसके बाद ही सारे विश्व में क्रय-शक्ति का ह्रास हुआ जिसके परिणामस्वरूप कीमतों में व्यापक और अनिष्टकारी गिरावट हुई। बेकारी के आँकड़े हर देश में दिन-दूने, रात-चौगुने बढ़ गये।

नवीन विचारधाराओं (हिटलर एवं मुसोलिनी) का उदय :

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद यूरोप में नाजीवाद और फासीवाद का उदय हुआ। इन नए सिद्धान्तों के आधार पर जर्मनी में हिटलर के नेतृत्व में नाजी सरकार बनी और फासीवाद के सिद्धांत के आधार पर मुसोलनी के नेतृत्व में इटली में सरकार बनी। ये दोनों सिद्धान्त राष्ट्र के गौरव और शक्ति पर बल देते थे। फलत: इन दोनों राष्ट्रों ने दूसरे राष्ट्रों पर आक्रमण करना शुरू किया जिससे विश्वयुद्ध की परिस्थितियां पैदा हुई। इन दोनों राष्ट्रों ने राष्ट्रीय गौरव के लिए साम्राज्यवादी लिप्सा को ही आधार बनाया। जापान, जर्मनी और इटली अपने साम्राज्य का विस्तार कर अपनी आर्थिक परेशानियों को दूर करना

हिटलर

चाहते थे और अपने राष्ट्र का नाम गौरवान्वित करना चाहते थे।

मुसोलिनी

जापान 19 वीं शताब्दी के अंत तक एक शक्तिशाली और औद्योगिक देश बन चुका था। प्रथम विश्वयुद्ध के पश्चात उसे भी प्रादेशिक लाभ हुआ। लेकिन उसके लिए उपनिवेश निहायत जरूरी हो गया था जिसके कारण वह अपने साम्राज्य के विस्तार के लिए कोशिश करने लगा। 1931 ई० में उसने चीन पर आक्रमण कर उसके एक क्षेत्र मंचूरिया पर कब्जा कर लिया। उसका यह आक्रमणकारी अभियान चलता रहा और वह जर्मनी एवं इटली का सहयोगी बनकर द्वितीय विश्वयुद्ध में बर्मा इत्यादि को जीतता हुआ भारत पर भी आक्रमण करने की योजना बनाने लगा। इस तरह जर्मनी, इटली और जापान की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षा द्वितीय विश्वयुद्ध का कारण बनी।

तुष्टिकरण की नीति :

इंगलैंड की तुष्टिकरण की नीति भी बहुत हद तक द्वितीय विश्वयुद्ध के लिए जिम्मेवार थी। पश्चिमी पूँजीवादी देश साम्यवादी रूस को नफरत की दृष्टि से देखते थे। वे चाहते थे कि हिटलर किसी भी तरह सोवियत रूस पर हमला कर दे, जिससे दोनों कमजोर हो जाए और तब वे हस्तक्षेप करके दोनों शक्ति को बर्बाद कर देंगे। इसलिए शुरू में पश्चिम के राष्ट्र हिटलर की माँगों को स्वीकार करते रहे और जब इन लोगों ने देखा कि हिटलर की माँग और महत्वाकांक्षा बढ़ती जा रही है तो अपना हाथ खींचना शुरू किया। तब तक देर हो चुकी थी। तुष्टिकरण की दिशा में अंतिम कदम म्युनिख समझौता था। हिटलर सुडेटनलैंड पर अधिकार करना चाहता था। इसके लिए 1938 ई० में म्युनिख में हिटलर और मुसोलनी मिले जहाँ इंगलैण्ड और फ्रांस ने हिटलर के सुडेटनलैंड पर अधिकार को मान्यता दे दी। 1939 में हिटलर ने पूरे चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार कर लिया। उसके बाद उसने डेंजिंग बन्दरगाह और पोलिश गलियारे की मांग पोलैंड से की। पोलैंड इसके लिए तैयार नहीं हुआ, जिसकी वजह से जर्मनी ने पोलैंड पर आक्रमण कर दिया।

युद्ध का आरंभ और घटनाक्रम :

1 सितम्बर 1939 को जैसे ही जर्मनी ने पोलैंड पर आक्रमण कर दिया, इसके साथ ही द्वितीय विश्वयुद्ध शुरू हो गया। ब्रिटेन और फ्रांस ने दो दिन बाद 3 सितम्बर 1939 को जर्मनी के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

रूस अपनी सुरक्षा के लिए बाल्टिक के तीन राज्यों एस्टोनिया, लैटविया और लिथुआनिया पर अपना प्रभाव जमाना चाहता था। सितम्बर-अक्टूबर के महीनों में उपर्युक्त तीनों देशों के विदेश मंत्रियों को मास्को बुलाया गया और तीनों विदेश मंत्रियों ने सोवियत संघ से पारस्परिक सहयोग की संधि कर ली। इस संधि के अनुसार सोवियत संघ की उपर्युक्त तीनों राज्यों में सेना रखने की अनुमति मिल गई। बदले में सोवियत संघ ने इन राज्यों की प्रादेशिक अखंडता को बनाए रखने का वादा किया।

फिनलैंड पर अपना प्रभाव रखना रूस अपनी सुरक्षा के लिए आवश्यक समझता था। रूस और फिनलैंड में इस विषय पर वार्ता भी चल रही थी, लेकिन इसी बीच दोनों में वार्ता भंग हो गई और सोवियत संघ ने फिनलैंड पर आक्रमण कर दिया। 12 मार्च 1940 को फिनलैंड ने आत्मसमर्पण कर दिया। उसी दिन फिनलैंड और सोवियत संघ में एक संधि हुई जिसके अनुसार सोवियत रूस को वे सारी सुविधाएँ प्राप्त हो गई, जिसको वह अपनी सुरक्षा के लिए आवश्यक समझता था।

नार्वे, डेनमार्क, हालैंड, बेल्जियम और फ्रांस पर विजय :

9 अप्रैल 1940 को जर्मनी ने नार्वे और डेनमार्क को हराया और उनकी सेना आगे बढ़ने लगी । जून 1940 तक बेल्जियम और फ्रांस पर कब्जा जमा लिया। 22 जून 1940 को फ्रांस ने आत्मसमर्पण कर दिया। इसी बीच इटली भी जर्मनी की ओर से युद्ध में शामिल हो गया था।

रूस पर आक्रमण

22 जून 1941 को जर्मनी ने रूस पर आक्रमण किया और एक बड़े भू-भाग को अपने कब्जे में कर लिया। साथ ही साथ पुनः जर्मन सेना मास्को की ओर बढ़ने लगी मगर रूस ने इसका डटकर मुकाबला किया और जर्मनी को पीछे हटना पड़ा। जब जर्मनी को मास्को क्षेत्र अपनाने में विफलता मिली तो उसने रूस के दक्षिणी भाग पर आक्रमण किया। अगस्त 1942

ई० में जर्मन सेना स्टालिनग्राद के निकट तक पहुँच गई। यह युद्ध करीब 5 महीनों तक चला। अगस्त-सितम्बर में स्टालिन ने अपनी सुरक्षा व्यवस्था का पुनर्गठन किया और रूसी सेना एवं नागरिकों को नए उत्साह से शत्रु को रोकने की प्रेरणा दी। आगे ब्रिटिश प्रधानमंत्री विंस्टन चर्चिल ने रूस जाकर स्टालिन को मित्र-राष्ट्रों की योजना समझाई और इसकी स्वीकृति प्राप्त कर ली। तदुपरांत रूसी सेनाओं ने जर्मनी के विरुद्ध प्रबल प्रत्याक्रमण आरम्भ कर दिये। अंततः फरवरी में रूस की सेना जर्मनी को हराने में सफल हुई। फरवरी 1943 ई० में हजारों जर्मन अफसर और सैनिकों ने आत्मसमर्पण कर दिया।

जापान द्वारा पर्ल हार्बर पर आक्रमण

जापान ने 7 दिसम्बर 1941 को हवाई द्वीप स्थित पर्ल हार्बर के अमेरिकी नौसैनिक अड्डे पर जबर्दस्त हमला किया। इसके कारण अमेरिका का प्रशान्त महासागर स्थित बेड़ा जो वहाँ रखा गया था, तहस-नहस हो गया। जिसकी वजह से अमेरिका ने 8 दिसम्बर 1941 को जापान के विरुद्ध युद्ध की घोषणा की। उसके बाद जर्मनी और इटली ने अमेरिका के खिलाफ युद्ध की घोषणा कर दी। अमेरिका के युद्ध में शामिल होने के बाद अमेरिकी महाद्वीप के सारे देश जर्मनी, इटली और जापान (धुरी राष्ट्र) के विरुद्ध युद्ध में शामिल हो गये।

अमेरिका के पर्ल हॉर्बर बन्दरगाह पर जापानी आक्रमण का दृश्य

दूसरा मोर्चा :

यूरोप में 1942 ई० के बाद जर्मनी और सोवियत संघ के बीच घमासान लड़ाई हुई। इसमें जर्मनी बुरी तरह पराजित हुआ। जर्मनी के इस पराजय में द्वितीय मोर्चा की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही। दूसरे मोर्चे में अमेरिका, इंगलैंड, रूस और फ्रांस आते थे। ये सब मिलकर जर्मनी को पराजित करने का प्रयास किये और 6 जून 1944 को जर्मन सेना परास्त हो गयी। इसके पहले ही इटली पूर्णतः पराजित हो मित्र राष्ट्रों से संधि कर चुका था। अंततः 07 मई 1945

ई० को जर्मनी ने आत्मसमर्पण कर दिया।

मित्र राष्ट्रों ने जुलाई 1945 ई० में जापान पर भीषण आक्रमण किया। 6 अगस्त 1945 को अमेरिका ने युद्ध के दौरान अत्यधिक विकसित हथियार एटम बम जापान के हिरोशिमा नामक शहर पर गिराया। फलतः हिरोशिमा का नामोनिशान मिट गया। दूसरा एटम बम 9 अगस्त 1945 को नागासाकी शहर पर गिराया गया और नागासाकी भी नेस्तनाबुद हो गया। जापान के सामने आत्मसमर्पण के सिवा कोई विकल्प नहीं था और जापान ने 2 सितम्बर 1945 को आत्मसमर्पण कर दिया, इसके साथ ही द्वितीय विश्वयुद्ध समाप्त हो गया।

द्वितीय विश्वयुद्ध के समय यूरोप

द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणाम

धन-जन की हानि : इस युद्ध में व्यापक धन-जन की हानि हुई। यह इतिहास का सबसे विनाशकारी युद्ध था। फासीवादियों ने यूरोप के एक बड़े भाग को बहुत बड़ा कब्रिस्तान बना रखा था। लगभग 60 लाख यहूदियों का जर्मनी ने मौत के घाट उतार दिया था। लाखों लोगों की हत्या यंत्रणा शिविरों में कर दी गयी। जापान पर की गई बमबारी और इससे हुए क्षति का आकलन संभव नहीं था । इस युद्ध में जितने लोग काल कलवित हुए उसका इतिहास में कोई उदाहरण नहीं मिलता। द्वितीय विश्वयुद्ध में 5 करोड़ से अधिक लोग मौत के घाट उतार दिए गए। इसमें लगभग 2.2 करोड़ सैनिक और 2.8 करोड़ से अधिक नागरिक शामिल थे। लगभग 1.2 करोड़ लोग यंत्रणा शिविरों या फासिवादियों के आतंक के कारण मारे गये। पोलैंड के 60 लाख लोग मारे गये जो कुल जनसंख्या का लगभग 20 प्रतिशत थी। इससे भयावह नुकसान सोवियत संघ का हुआ। उसके दो करोड़ लोग मारे गये, जो आबादी का दसवाँ हिस्सा था। जर्मनी के लगभग 60 लाख से अधिक मारे गए जो आबादी का लगभग दसवाँ भाग था।

मानवीय क्षति से अलग बड़े पैमाने पर भौतिक संसाधनों का भी क्षय हुआ। अनेक

प्राचीन नगर पूरी तरह नष्ट हो गये। द्वितीय विश्वयुद्ध की कुल लागत बहुत ऊँची थी, अनुमान के अनुसार यह लागत लगभग 13 खरब 84 अरब 90 करोड़ डालर थी।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान तबाही के लिए नए-नए हथियारों का विकास और उपयोग हुआ। इनमें सबसे भयानक था-परमाणु बम। परमाणु बम का सबसे पहले इस्तेमाल संयुक्त राज्य अमेरिका ने द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान जापान के खिलाफ किया। परमाणु बम का पहला परीक्षण जुलाई 1945 में किया गया। जर्मनी तब तक आत्मसमर्पण कर चुका था।

यूरोपीय श्रेष्ठता और उपनिवेशों का अंत– द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद एशिया महाद्वीप से यूरोपीय राष्ट्रों की प्रभुता लगभग समाप्त हो गई। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद भारत, श्रीलंका, बर्मा, मलाया, हिंदेशिया, मिस्र इत्यादि ने स्वतंत्रता पाई। यूरोपीय श्रेष्ठता का भी अंत हुआ। कहा जाता है कि इंगलैंड के राज्य में कभी सूरज नहीं डूबता था, द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद से वह डूबने लगा।

इंगलैंड की शक्ति का ह्रास और रूस तथा अमेरिका की शक्ति में वृद्धि– प्रत्यक्ष रूप से तो युद्ध में जर्मनी, जापान और इटली की हार हुई थी, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से इस युद्ध में इंगलैंड की भी पराजय हुई। युद्ध के बाद इंगलैंड विश्व की सबसे बड़ी शक्ति नहीं रह गया। इंगलैंड के उपनिवेश मुक्त हो गए, इंगलैंड की शक्ति और संसाधन सीमित हो गए और इसके बदले में अमेरिका और रूस अपनी असीम आर्थिक संसाधनों के साथ विश्व की राजनीति में शक्तिशाली देश के रूप में उभरे।

संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना– द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत संयुक्त राष्ट्र संघ का निर्माण कर विश्व शांति को कायम करने की चेष्टा गई की। द्वितीय विश्वयुद्ध ने शांति और अशांति के दो निर्णायक केन्द्र परमाणु बमों का विकास व शस्त्रीकरण और संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना को सामने लाया, जो आज भी सम्पूर्ण विश्व को नियंत्रित-निर्देशित कर रहे हैं।

विश्व में गुटों का निर्माण– पहले विश्व की राजनीति में इंगलैंड छाया हुआ था, लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद विश्व साम्यवादी और पूँजीवादी खेमे में बँट गया। साम्यवादी खेमा का नेतृत्व सोवियत रूस कर रहा था, तो पूँजीवादी खेमा का नेतृत्व संयुक्त राज्य अमेरिका कर रहा था। एक गुटनिरपेक्ष राज्यों के संघ के रूप में तीसरा खेमा सामने आया, यह मूलतः नवोदित स्वतंत्र और विकासशील राष्ट्र थे। पूँजीवादी राष्ट्र और उनकी साम्राज्यवादी मंशा का स्वरूप भी बदल गया। अब पूँजीवादी राष्ट्र सीधे-सीधे उपनिवेशों की स्थापना से बचने लगे और औपनिवेशिक देशों के आर्थिक तंत्र तक अपने को केन्द्रित करने लगे। इस प्रकार साम्राज्यवाद का भी स्वरूप बदला।

अभ्यास :

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

सही उत्तर का संकेताक्षर **(क, ख, ग, घ आदि) लिखें।**

1. प्रथम विश्वयुद्ध कब आरंभ हुआ?

   (क) 1941 ई० (ख) 1952 ई०
   (ग) 1950 ई० (घ) 1914 ई०

2. प्रथम विश्वयुद्ध में किसकी हार हुई?

   (क) अमेरिका की (ख) जर्मनी की
   (ग) रूस की (घ) इंगलैंड की

3. 1917 ई० में कौन देश प्रथम विश्व युद्ध से अलग हो गया?

   (क) रूस (ख) इंगलैंड
   (ग) अमेरिका (घ) जर्मनी

4. वर्साय की संधि के फलस्वरूप इनमें किस महादेश का मानचित्र बदल गया?

   (क) यूरोप का (ख) ऑस्ट्रेलिया का
   (ग) अमेरिका का (घ) रूस का

5. त्रिगुट समझौते में शामिल थे–

   (क) फ्रांस ब्रिटेन और जापान (ख) फ्रांस, जर्मनी और ऑस्ट्रिया
   (ग) जर्मनी, आस्ट्रिया और इटली (घ) इंगलैंड, अमेरिका और रूस

6. द्वितीय विश्वयुद्ध कब आरंभ हुआ?

   (क) 1939 ई० में (ख) 1941 ई० में
   (ग) 1936 ई० में (घ) 1938 ई० में

7. जर्मनी को पराजित करने का श्रेय किस देश को है?

   (क) फ्रांस को (ख) रूस को
   (ग) चीन को (घ) इंगलैंड को

8. द्वितीय विश्वयुद्ध में कौन-सा देश पराजित हुआ?

   (क) चीन (ख) जापान
   (ग) जर्मनी (घ) इटली

9. द्वितीय विश्वयुद्ध में पहला एटम बम कहाँ गिराया गया था?

   (क) हिरोशिमा पर (ख) नागासाकी पर
   (ग) पेरिस पर (घ) लन्दन पर

10. द्वितीय विश्वयुद्ध कब अन्त हुआ?

(क) 1939 ई० को (ख) 1941 ई० को

(ग) 1945 ई० को (घ) 1938 ई० को

II. उपयुक्त शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

1. द्वितीय विश्वयुद्ध के फलस्वरूप.....................साम्राज्यों का पतन हुआ।
2. जर्मनी का.....................पर आक्रमण द्वितीय विश्वयुद्ध का तात्कालिक कारण था।
3. धुरी राष्ट्रों में.....................ने सबसे पहले आत्मसमर्पण किया।
4. ....की संधि की शर्तें द्वितीय विश्वयुद्ध के लिए उत्तरदायी थी।
5. अमेरिका ने दूसरा एटम बम जापान के .... बन्दरगाह पर गिराया था।
6. .... की संधि में ही द्वितीय विश्व युद्ध के बीज निहित थे।
7. प्रथम विश्व युद्ध के बाद .... एक विश्वशक्ति बनकर उभरा।
8. प्रथम विश्व युद्ध के बाद मित्रराष्ट्रों ने जर्मनी के साथ .... की संधि की।
9. राष्ट्रसंघ की स्थापना का श्रेय अमेरिका के राष्ट्रपति .... को दिया जाता है।
10. राष्ट्रसंघ की स्थापना .... ई० में की गई।

III. लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. प्रथम विश्व युद्ध के उत्तरदायी किन्हीं चार कारणों का उल्लेख करें।
2. त्रिगुट (Triple Alliance) तथा त्रिदेशीय संधि (Triple Entente) में कौन-कौन से देश शामिल थे। इन गुटों की स्थापना का उद्देश्य क्या था?
3. प्रथम विश्व युद्ध का तात्कालिक कारण क्या था?
4. सर्वस्लाव आन्दोलन का क्या तात्पर्य है?
5. उग्र राष्ट्रीयता प्रथम विश्व युद्ध का किस प्रकार एक कारण था?
6. ''द्वितीय विश्वयुद्ध प्रथम विश्वयुद्ध की ही परिणति थी।'' कैसे?

7. द्वितीय विश्वयुद्ध के लिए हिटलर कहाँ तक उत्तरदायी था?
8. द्वितीय विश्वयुद्ध के किन्हीं पाँच परिणामों का उल्लेख करें।
9. तुष्टिकरण की नीति क्या है?
10. राष्ट्रसंघ क्यों असफल रहा?

IV. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

1. प्रथम विश्व युद्ध के क्या कारण थे? संक्षेप में लिखें।
2. प्रथम विश्व युद्ध के क्या परिणाम हुए?
3. क्या वर्साय संधि एक आरोपित संधि थी?
4. विस्मार्क की व्यवस्था ने प्रथम विश्वयुद्ध का मार्ग किस तरह प्रशस्त किया ?
5. द्वितीय विश्वयुद्ध के क्या कारण थे? विस्तारपूर्वक लिखें।
6. द्वितीय विश्वयुद्ध के परिणामों का उल्लेख करें।

इकाई–5

नाजीवाद

यूरोप में दो महायुद्धों के बीच महत्वपूर्ण राजनैतिक परिवर्तन आए जिनमें सबसे विनाशकारी परिवर्तन तानाशाहों का उत्कर्ष था। इटली में बेनिटो मुसोलनी के नेतृत्व में फासीवाद तथा एडोल्फ हिटलर के नेतृत्व में जर्मनी में नाजीवाद का उत्कर्ष ऐसे ही दो उदाहरण हैं। नाजीवाद एक आक्रामक विचारधारा थी जिसमें राष्ट्र की सर्वोपरिता को सबसे महत्वपूर्ण माना गया। व्यक्तिगत स्वतंत्रता को राज्य हित के आगे त्यागने और अर्थव्यवस्था पर राज्य के पूर्ण नियंत्रण की बात कही गई एवं जर्मनी के विरुद्ध हुए अन्याय का बदला लेने और जर्मनी के सम्मान और गौरव को पुनर्स्थापित करने के उपाए किए गए। हिटलर के उत्कर्ष और उसके नेतृत्व में नात्सी क्रांति के मुख्य कारण निम्नलिखित हैं :–

1. गणतंत्र की स्थापना :

प्रथम विश्व युद्ध (1914-18) में जर्मनी की पराजय से उत्पन्न अनियंत्रित स्थिति को संभालने में शासक कैसर विलियम द्वितीय असमर्थ था। अतः प्रतिकूल स्थिति पाकर उन्होंने त्यागपत्र दे दिया और 10 नवम्बर, 1918 ई० को हॉलैण्ड भाग गया। ऐसी अवस्था में समाजवादी प्रजातांत्रिक दल ने सत्ता अपने हाथ में लेकर एकतंत्र के स्थान पर जर्मनी में गणतंत्र की स्थापना की और अपने नेता फ्रेडरिक एबर्ट को चांसलर बनाया। 11 नवम्बर, 1918 ई० को इस नई सरकार ने युद्ध विराम संधि पर हस्ताक्षर कर दिया। इसके बाद संविधान सभा का चुनाव हुआ तथा इसकी प्रथम बैठक 5 फरवरी, 1919 ई० को वाइमर नामक स्थान पर हुई इसलिए यह संविधान वाइमर संविधान या वाइमर गणतंत्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यह संविधान 10 अगस्त 1919 ई० को लागू हुआ। वाइमर संविधान के अनुसार जर्मनी में संघीय शासन व्यवस्था की स्थापना की गई तथा राष्ट्रपति को आपातकालीन शक्तियाँ प्रदान की गई।

जर्मनी की तात्कालिक स्थिति

1. गणतंत्र की स्थापना
2. वर्साय की अपमानजनक संधि
3. आर्थिक संकट
4. क्षतिपूर्ति की कठोर शर्तें
5. साम्यवाद का बढ़ता खतरा

भारतीय संविधान में राष्ट्रपति के आपातकालीन शक्ति का स्रोत वाइमर संविधान से ही माना जाता है। परन्तु नया वाइमर गणतंत्र युद्धोपरांत जर्मनी की स्थिति संभालने में असफल रहा, फलतः जनता में काफी आक्रोश था।

2. वर्साय की अपमानजनक संधि :

प्रथम विश्व युद्ध के बाद 28 जून, 1919 ई० में जर्मनी की नई गणतंत्र को अपमानजनक वर्साय संधि पर हस्ताक्षर करने के लिए मजबूर किया गया। वस्तुतः यह संधि काफी कठोर एवं आरोपित थी।

इस संधि द्वारा जर्मनी का अंग भंग कर दिया गया। आल्सेस लॉरेन का क्षेत्र फ्रांस को लौटा दिया गया तथा जर्मन क्षेत्र में स्थित 'सार' नामक कोयले की खान को 15 वर्षों के लिए फ्रांस को दे दिया गया और उस क्षेत्र का शासन राष्ट्रसंघ को सौंप दिया गया। राइन नदी घाटी के क्षेत्र को सेना रहित करने का निर्णय किया गया। सैनिक दृष्टिकोण से भी जर्मनी को पंगु बना दिया गया जो जर्मनी जैसे स्वाभिमानी राष्ट्र के लिए उचित नहीं था। इस प्रकार वर्साय संधि से उत्पन्न असंतोष का भरपूर फायदा हिटलर ने उठाया।

3. आर्थिक संकट :

इस समय जर्मन गणतंत्र के सामने भीषण समस्या आर्थिक संकट की थी। युद्ध में जर्मनी की काफी वित्तीय क्षति हुई थी। युद्धोपरांत अनेक कल-कारखाने बन्द हो गये और बेरोजगारी की समस्या चरम पर पहुँच गई। आर्थिक दृष्टि से खस्ताहाल जर्मनी पर वर्साय-संधि द्वारा क्षतिपूर्ति की एक बहुत बड़ी राशि लाद दी गई। इस समय यहाँ कृषि की दशा भी अच्छी नहीं थी। उसके औद्योगिक नगर मित्र राष्ट्रों ने छिन लिए थे और समस्त जर्मन व्यापार नष्ट हो गया था। अतः सारे जर्मनी में अव्यवस्था एवं असंतोष का वातावरण मौजूद था जिसने हिटलर के उदय की पृष्ठभूमि का निर्माण किया।

4. क्षतिपूर्ति की कठोर शर्तें :

प्रथम विश्व युद्ध के बाद क्षतिपूर्ति के रूप में जर्मनी से वसूल किये जाने वाली राशि 6 अरब 10 करोड़ पौंड निश्चित की गई थी। परन्तु इतनी बड़ी राशि का भुगतान करना जर्मनी के लिए असंभव था। इधर मित्र राष्ट्रों द्वारा भुगतान के लिए हमेशा दबाव बनाया जाता रहा जो व्यवहारिक कदम नहीं था।

5. साम्यवाद का बढ़ता संकट :

1917 की रूसी क्रांति का प्रभाव जर्मनी पर पड़ा। यहाँ भी साम्यवादी संगठनों का निर्माण हुआ। साम्यवादियों ने वाइमर गणतंत्र को उखाड़ने एवं सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद लाने का प्रयास किया। अतः जर्मनी का उद्योगपति, पूँजीपति एवं जमींदार वर्ग काफी भयभीत हो गया। इस प्रकार, हिटलर ने साम्यवाद विरोधी नारा देकर समाज के धनी वर्गों की सहानुभूति भी अपने पक्ष में कर लिया।

अतः कहा जा सकता है कि प्रथम विश्व युद्ध के बाद जर्मनी की तात्कालिक स्थिति काफी दयनीय थी। चारो ओर निराशा एवं अराजकता का वातावरण था। जर्मन जनता वैकल्पिक नेतृत्व के बारे में सोच ही रही थी कि उसे हिटलर जैसा तेजस्वी नेता मिला जिसकी आवाज में जादू था और जिसके करिश्माई व्यक्तित्व में चुम्बकीय आकर्षण तो था ही। जर्मन जनता से उसने खुशहाली का वादा किया तथा राष्ट्र के गौरव की पुनर्स्थापना का वचन दिया। जर्मन जनता उसके शब्दजाल में फँस कर अपना भविष्य उसके हाथों में सौंप दिया। इस प्रकार हिटलर के उदय की पृष्ठभूमि का निर्माण हुआ।

हिटलर एवं उसके कार्य

एडोल्फ हिटलर का जन्म 20 अप्रैल, 1889 ई० को ऑस्ट्रिया के ब्रौना नामक शहर में एक साधारण परिवार में हुआ था। उसका लालन-पालन सही तरह से नहीं हो सका। बचपन में वह चित्रकार बनना चाहता था परन्तु उसकी इच्छा पूरी नहीं हो सकी। अंततः उसने सेना में नौकरी कर ली। प्रथम विश्व युद्ध (1914-1918) में वह जर्मनी की तरफ से लड़ा था और युद्ध में अभूतपूर्व वीरता के लिए उसे 'आयरन क्रास' प्राप्त हुआ था। परन्तु जर्मनी द्वारा विराम संधि पर हस्ताक्षर करने से उसे भारी निराशा हुई। युद्ध के बाद वह 'जर्मन वर्कर्स पार्टी' का सदस्य बना। 1920 ई० में इस पार्टी का नाम बदलकर 'नेशनल सोशलिस्ट जर्मन वर्कर्स पार्टी' रखा गया। धीरे-धीरे हिटलर इसका फ्यूहरर (नेता) बन गया।

एडोल्फ हिटलर

हिटलर ने अपने चारो तरफ रूडोल्फ और गोबल्स जैसे हंगामा करने वालों को इकट्ठा किया। जिसकी नीति थी–'अफवाह को इतना फैला दो कि वह सत्य प्रतीत होने लगे।' प्रथम विश्व युद्ध के बाद संधि के तहत जर्मन प्रदेश रूर पर फ्रांस का कब्जा हो गया। जर्मन प्रदेश 'रूर' औद्योगिक रूप से काफी संपन्न था। अत: जर्मन वासियों ने फ्रांसीसी आधिपत्य का विरोध किया। हिटलर मौके के तलाश में था एवं उसने जनाक्रोश का लाभ उठाकर लूडेनर्डाफ के साथ मिलकर 1923 ई० में वाइमर गणतंत्र के खिलाफ विद्रोह कर दिया। विद्रोह असफल हुआ एवं हिटलर को बंदी बना लिया गया। जेल में ही हिटलर ने अपनी प्रसिद्ध आत्मकथा 'मीनकैम्फ' की रचना की जिसमें उसने भावी कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत की है। 1924 ई० के अंत में उसे रिहा कर दिया गया। रिहा होकर उसने अपने दल को नये सिरे से संगठित किया। आर्यो की पवित्रता के सूचक 'स्वास्तिक' को प्रतीक के रूप में ग्रहण किया तथा सैनिक ढंग से पार्टी को संगठित किया। हालांकि नाजी पार्टी के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए 'स्टेसमान' के नेतृत्व में गणतंत्रवादियों ने कई कार्यक्रम शुरू किए। 1925 ई० के लोकार्नो समझौते ने जर्मनी को वैश्विक समुदाय में सम्मान जनक स्थान प्रदान किया जर्मनी को राष्ट्रसंघ की सदस्यता मिल गई। 1924 ई० में जर्मनी के निम्न सदन 'राइखस्टैग' के चुनाव में नाजी पार्टी को 32 स्थान मिले थे वहीं 1928 के चुनाव में घटकर 12 हो गया। इस प्रकार नाजी पार्टी एवं हिटलर का प्रभाव जर्मनी में कम होने लगा। परन्तु हिटलर ने हिम्मत नहीं हारा। इसी समय 1929 ई० में प्रारंभ हुए विश्व आर्थिक मंदी तो हिटलर के लिए नवजीवन का संदेश लेकर आया। विश्व आर्थिक मंदी से सर्वाधिक प्रभावित जर्मनी हुआ था। अब वाइमर गणतंत्र से जर्मन जनता का विश्वास उठने लगा था। हिटलर ने इस परिस्थिति का भरपूर लाभ उठाया और वाइमर गणतंत्र, वर्साय संधि एवं यहूदियों के खिलाफ आग उगलना आरंभ कर दिया तथा उन्हें जर्मनी की वर्तमान दुर्दशा के लिए जिम्मेवार ठहराया। उसने मध्यवर्ग और बेकार नौजवानों को अपना प्रबल समर्थक बना लिया तथा साम्यवाद का हौवा खड़ा कर बड़े-बड़े उद्योगपतियों को भी अपना समर्थक बना लिया। अब नाजी पार्टी की शक्ति में दिन-दूना रात चौगुना वृद्धि होने लगी। 1930 ई० के चुनाव में उसे 107 सीटें मिली तथा 1932 ई० के चुनाव में 230 सीटें प्राप्त की परन्तु उसे सरकार बनाने का मौका नहीं मिला। बाद में राष्ट्रपति हिंडेनवर्ग ने 30 जनवरी 1933 को हिटलर को चांसलर मनोनीत किया। फलत: उसने निरंकुश अधिकार प्राप्त किया। सत्ता प्राप्त करते ही उसने चुनाव कराने की घोषणा की तथा चुनाव प्रणाली का संगठन इस तरह से किया कि नाजी पार्टी के लोग ही चुनाव जीत कर आ सकते थे। इस प्रकार जर्मन गणतंत्र की समाप्ति हुई और नात्सी क्रांति की शुरूआत हुई, जिसे हिटलर ने 'तृतीय राइख' का नाम दिया। अगस्त 1934 में हिंडेनवर्ग की मृत्यु होने पर चांसलर और राष्ट्रपति के पद को मिलाकर एक कर दिया गया। अब हिटलर जर्मनी का सर्वेसर्वा बन गया तथा अब उसने नाजीवादी दर्शन एवं विदेश

नीति का अवलंबन किया जिसके कारण पूरे विश्व में तनाव के वातावरण का निर्माण हुआ तथा द्वितीय विश्व युद्ध नजदीक दिखाई पड़ने लगा।

नाजीवादी दर्शन

1. नाजीवाद में उदारवाद एवं लोकतंत्र का कट्टर विरोध की अवधारणा है। अतः हिटलर ने सत्ता प्राप्त करते ही प्रेस तथा वाक् अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगा दिया एवं विरोधी दलों का सफाया कर दिया। उसने शिक्षण संस्थाओं तथा जनसंचार पर भी प्रतिबंध लागू किया। इस प्रकार जर्मनी में लोकतांत्रिक आवाज को दफन करने का प्रयास हुआ जो राष्ट्र के लिए घातक सिद्ध हुआ।

2. यह दर्शन अंतर्राष्ट्रीय समाजवाद का भी प्रबल विरोधी है। हिटलर ने भी समाजवाद के विरुद्ध आवाज बुलंद किया तथा जर्मन पूँजीपतियों को अपनी ओर मिला लिया। हिटलर के इस कार्य को इंगलैण्ड एवं फ्रांस की ओर से भी अप्रत्यक्ष समर्थन मिला जिसके कारण उसका मनोबल बढ़ता गया। अंततः पूरा विश्व एक भयंकर युद्ध के नजदीक अपने को खड़ा पाया।

नात्सी शब्द जर्मन भाषा के शब्द 'नात्सियोणाल' के प्रारंभिक अक्षरों को लेकर बनाया गया है, 'नात्सियोणाल' शब्द हिटलर की पार्टी के नाम का पहला शब्द था इसलिए इस पार्टी के लोगों को नात्सी कहा जाता था।

3. नाजीवादी दर्शन में सर्वसत्तावादी राज्य की संकल्पना है। अर्थात् इसके अनुसार राज्य के भीतर ही सब कुछ है, राज्य के बाहर एवं विरुद्ध कुछ नहीं है।

4. यह दर्शन उग्र राष्ट्रवाद पर बल देता है। हिटलर ने सत्ता प्राप्त करते ही उग्र राष्ट्रवाद पर बल दिया है। चूँकि जर्मनी में प्रारंभ से ही उग्र राष्ट्रवाद एवं सैनिक तत्व की परंपरा रही है। अतः हिटलर ने जर्मनी के इस मनोवृति का लाभ उठाया तथा अपने आक्रामक वक्तव्यों के द्वारा पूरे जर्मन वासियों को अपमान का बदला लेने के लिए मानसिक स्तर पर तैयार कर दिया। अब पूरे जर्मनी में युद्ध का माहौल दिखाई पड़ने लगा।

5. नाजीवाद राजा की निरंकुश शक्ति पर बल प्रदान करता है। जर्मनी में हिटलर ने निरंकुश शक्ति का सहारा लिया। सत्ता में आते ही उसने गुप्तचर पुलिस 'गेस्टापों' का संगठन किया जिसका आतंक पूरे जर्मनी पर छा गया। उसने विशेष कारागृह की स्थापना की जिसके माध्यम से

राजनीतिक विरोधियों का दमन किया गया। राइखस्टाग की इमारत में हिटलर ने खुद आग लगवाई परन्तु उसका दोषारोपण समाजवादियों पर मढ़ दिया। इस प्रकार उनका राजनैतिक जीवन समाप्त कर दिया गया। अब जर्मनी में एक पार्टी थी–नाजी पार्टी एवं एक नेता था–हिटलर।

6. नाजीवादी दर्शन में सैनिक शक्ति एवं हिंसा को महिमामंडित किया जाता है।

इस प्रकार नाजीवादी दर्शन द्वारा जर्मनी में असंतोष का फायदा हिटलर ने उठाया। हालांकि उसने जर्मनी की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए अथक प्रयास किया तथा देखते-ही-देखते जर्मनी, यूरोप की सबसे बड़ी औद्योगिक शक्ति बन गया। परन्तु हिटलर ने अपनी शक्ति का प्रयोग नकारात्मक दिशा में किया जो राष्ट्र के लिए खतरनाक एवं विरोधी बन गया। हालांकि राष्ट्रवादी होना देश के हित में है परन्तु उग्र राष्ट्रवाद की भावना भरकर जर्मन मनोवृति को पीछे की ओर मोड़ने का प्रयास किया गया जो शायद राष्ट्रहित में नहीं था। हिटलर ने जर्मनी में तानाशाही शासन की स्थापना की जिसके दूरगामी परिणाम सही नहीं हुए क्योंकि तब पूरा दुनिया स्वयं को द्वितीय विश्व युद्ध के नजदीक खड़ा पा रहा था।

नाजीवाद का प्रभाव :

1. यूरोप के अन्य देशों में स्वतंत्रता विरोधी भावनाओं को प्रोत्साहन मिला।
2. विश्व में शांति विरोधी वातावरण का निर्माण हुआ तथा राष्ट्रसंघ द्वारा प्रतिपादित सामूहिक सुरक्षा के सिद्धांत को आघात पहुँचा।
3. पूरे विश्व में साम्यवाद विरोधी आंदोलनों में तेजी आई।
4. यूरोप में तुष्टिकरण की नीति का प्रचलन हुआ।
5. द्वितीय विश्व युद्ध (1939-1945) की शुरूआत हुई।

हिटलर की विदेश नीति

प्रथम विश्व युद्धोपरांत पराजित जर्मनी पर मित्र राष्ट्रों द्वारा वर्साय संधि की अपमानजनक शर्तें लाद दी गई थी। सैनिक एवं आर्थिक रूप से जर्मनी को पंगु बना दिया गया था। पूरे जर्मनी

में वाइमर गणतंत्र एवं मित्र राष्ट्रों के खिलाफ बदले की भावना प्रज्वलित हो रही थी। अतः हिटलर ने इस परिस्थिति का भरपूर फायदा उठाया एवं बड़ी सावधानी से विदेश नीति का अवलंबन किया। उसकी विदेश नीति के मूल सिद्धांत थे–

1. वर्साय संधि को भंग करना।
2. सारी जर्मनी जाति को एक सूत्र में संगठित करना।
3. जर्मनी साम्राज्य का विस्तार करना।
4. साम्यवाद के प्रसार को रोकना।

इन सिद्धांतों की प्राप्ति के लिए उसने निम्नलिखित कदम उठाए :–

1. राष्ट्रसंघ से पृथक होना : हिटलर ने अपने उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सर्वप्रथम 1933 में जेनेवा निःशस्त्रीकरण की शर्तें सभी राष्ट्रों पर समान रूप से लागू करने की माँग की परन्तु जब उसे सफलता नहीं मिली तो उसने जर्मन प्रतिनिधियों को वापस बुला लिया एवं 1933 में राष्ट्रसंघ की सदस्यता छोड़ने की घोषणा कर दी।

2. वर्साय की संधि को भंग करना : 1935 में हिटलर ने वर्साय संधि की निःशस्त्रीकरण संबंधी सभी धाराओं को तोड़ने की घोषणा की एवं उसने पूरे जर्मनी में अनिवार्य सैनिक सेवा लागू कर दिया। उसने स्पष्ट शब्दों में यह कहा कि अब जर्मनी अपने को वर्साय संधि से मुक्त समझेगा।

3. पोलैंड के साथ दस वर्षीय समझौता : हिटलर ने 1934 में पोलैंड के साथ दस वर्षीय अनाक्रमण संधि की जिसके अनुसार यह तय हुआ कि वे एक दूसरे की वर्तमान सीमाओं का किसी भी प्रकार अतिक्रमण नहीं करेंगे।

हिटलर की विदेश नीति :

- राष्ट्रसंघ से पृथक होना
- वर्साय संधि को भंग करना
- पोलैंड के साथ दस वर्षीय समझौता
- ब्रिटेन से समझौता
- रोम-बर्लिन धुरी
- कामिन्टर्न विरोधी समझौता
- ऑस्ट्रिया एवं चेकोस्लोवाकिया का विलय
- पोलैंड पर आक्रमण

4. ब्रिटेन से समझौता : जून 1935 में जर्मनी तथा ब्रिटेन में समझौता हो गया जिसके अनुसार ब्रिटेन ने स्वीकार कर लिया कि वह (जर्मनी) अपनी सैन्य शक्ति (स्थल तथा वायु सेना) बढ़ा सकता है, बशर्ते वह अपनी नौ सेना 35 प्रतिशत से अधिक न बढ़ाये। हिटलर की यह एक बड़ी कूटनीतिक विजय थी।

हिटलर के काल में जर्मनी

5. रोम-बर्लिन धुरी : हिटलर की आक्रामक नीति ने जर्मनी को अंतर्राष्ट्रीय बिरादरी से अलग कर दिया था। अत: मित्र की तलाश में हिटलर ने इटली की ओर हाथ बढ़ाया और इस प्रकार रोम-बर्लिन धुरी का निर्माण हुआ। इन दोनों मित्रों ने स्पेन के सैनिक शासक जेनरल फ्रैंको की भी मदद पहुँचाई।

6. कामिन्टर्न विरोधी समझौता : साम्यवादी खतरा से बचने के लिए जर्मनी, इटली एवं जापान के बीच कामिन्टर्न विरोधी समझौता 1936 ई० में संपन्न हुआ जो कालान्तर में धुरी राष्ट्र के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

7. ऑस्ट्रिया एवं चेकोस्लोवाकिया का विलयन : जर्मन भाषा-भाषी को एक सूत्र में बाँधना भी हिटलर की विदेश नीति का लक्ष्य था। अत: वह ऑस्ट्रिया को अपने साम्राज्य में मिलाना

चाहता था। प्रारंभ में इटली ने विरोध किया परन्तु अंततः ऑस्ट्रिया को जर्मन साम्राज्य में मिला लिया गया फलतः हिटलर का मनोबल काफी बढ़ गया।

चेकोस्लोवाकिया के सुडेटनलैंड में जर्मन जाति के लोग रहते थे, अतः हिटलर ने चेक सरकार से सुडेनटनलैंड की माँग की जिसे उसने अस्वीकार कर दिया। फलतः इंगलैण्ड, फ्रांस एवं इटली के अनुरोध पर 1938 के म्यूनिख सम्मेलन में सुडेटनलैंड जर्मनी को दे दिया गया। लेकिन हिटलर तो पूरे चेक गणराज्य को हस्तगत करना चाहता था, अतः उसने 1939 में ही समस्त चेक गणराज्य पर अधिकार कर लिया। इसके बाद उसने मेमेल बंदरगाह पर भी अधिकार कर लिया। परन्तु मित्र राष्ट्र मूकदर्शक की भूमिका में बने रहे जिससे हिटलर का मनोबल बढ़ता गया।

8. पोलैण्ड पर आक्रमण : पोलैण्ड के डान्जिंग बंदरगाह पर आक्रमण करना हिटलर का अगला लक्ष्य था। पोलैण्ड को बाल्टिक सागर तक पहुँचने के लिए जर्मनी का कुछ भूभाग दे दिया गया था, जिसे पोलिश गलियारा कहा जाता था। हिटलर ने डान्जिंग बंदरगाह तथा पोलिश गलियारे की माँग की एवं इसी प्रश्न पर जब उसने पोलैंड पर 1 सितम्बर 1939 को आक्रमण कर दिया तो फ्रांस, इंग्लैण्ड आदि ने हस्तक्षेप किया और इस प्रकार द्वितीय विश्व युद्ध (1939-1945) की शुरूआत हुई। इस युद्ध में हिटलर का तंत्र लड़खड़ा गया तथा प्रारंभ की आशातीत सफलता के बाद मित्र देशों की शक्ति के सामने जर्मनी पराजित होने लगा। 1945 में जब विजयी सेनाएँ बर्लिन पहुँची तब तक हिटलर अपने बंकर में आत्महत्या कर चुका था। इस प्रकार विश्व समुदाय को एक तानाशाह से मुक्ति मिली एवं वैश्विक शांति हेतु 24 अक्टूबर 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई।

तालिका-1

वर्ष	सदस्य संख्या (नाजी पार्टी)
1924	32
1928	12
1930	107
1932	230

राइखस्टैग (निम्न सदन) में नाजी पार्टी की स्थिति

अभ्यास

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. हिटलर का जन्म कहाँ हुआ था?

(क) जर्मनी　　(ख) इटली
(ग) जापान　　(घ) ऑस्ट्रिया

2. नाजी पार्टी का प्रतीक चिह्न क्या था?

(क) लाल झंडा　　(ख) स्वास्तिक
(ग) ब्लैक शर्ट　　(घ) कबूतर

3. 'मीनकैम्फ' किसकी रचना है।

(क) मुसोलनी　　(ख) हिटलर
(ग) हिण्डेनवर्ग　　(घ) स्ट्रेसमैन

4. जर्मनी का प्रमुख औद्योगिक क्षेत्र था।

(क) आल्सस-लॉरेन　　(ख) रूर
(ग) इवानोव　　(घ) बर्लिन

5. जर्मनी की मुद्रा का नाम क्या था।

(क) डॉलर　　(ख) पौंड
(ग) मार्क　　(घ) रूबल

II. सही कथनों का चुनाव करें :

1. हिटलर लोकतंत्र का समर्थक नहीं था।
2. नाजीवादी कार्यक्रम यहूदी समर्थक था।
3. नाजीवाद में निरंकुश सरकार का प्रावधान था।
4. वर्साय संधि में हिटलर के उत्कर्ष के बीज निहित थे।
5. नाजीवाद में सैनिक शक्ति एवं हिंसा को गौरवान्वित किया जाता है।

III. रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

1. हिटलर का जन्म.......................ई० में हुआ था।
2. हिटलर जर्मनी के चांसलर का पद.......................ई० में संभाला था।
3. जर्मनी ने राष्ट्रसंघ से संबंध विच्छेद.......................ई० में किया था।

4. नाजीवाद का प्रवर्त्तक.........................था।
5. जर्मनी के निम्न सदन को.........................कहा जाता था।

IV. 20 शब्दों में उत्तर दें :

1. तानाशाह
2. वर्साय संधि
3. तुष्टिकरण की नीति
4. वाइमर गणराज्य
5. साम्यवाद
6. तृतीय राइख

V. सही मिलान करें :

1. गेस्टापो	(क) जर्मनी का शहर
2. वाइमर	(ख) यहूदियों के प्रार्थनागृह
3. सिनेगॉंव	(ग) गुप्तचर पुलिस
4. ब्राउन शर्ट्स	(घ) निजी सेना
5. हिंडेनबर्ग	(ङ) जर्मनी राष्ट्रपति

VI. लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. वर्साय संधि ने हिटलर के उदय की पृष्ठभूमि तैयार की, कैसे?
2. वाइमर गणतंत्र नाजीवाद के उदय में सहायक बना, कैसे?
3. नाजीवाद कार्यक्रम ने द्वितीय विश्व युद्ध की पृष्ठभूमि तैयार की, कैसे?
4. क्या साम्यवाद के भय ने जर्मन पूँजीपतियों को हिटलर का समर्थक बनाया ?
5. रोम-बर्लिन टोकियो धुरी क्या है?

VII. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. हिटलर के व्यक्तित्व पर प्रकाश डालें।
2. हिटलर की विदेश नीति जर्मनी की खोई प्रतिष्ठा प्राप्त करने का एक साधन था। कैसे?
3. नाजीवादी दर्शन निरंकुशता का समर्थक एवं लोकतंत्र का विरोधी था। विवेचना कीजिए।

इकाई-6

वन्य-समाज और उपनिवेशवाद

प्रारम्भ से ही भारत में वन सम्पदा एक महत्वपूर्ण संसाधन के रूप में रहा है। लगभग बाइस से पच्चीस प्रतिशत भारत की भूमि वनों से आच्छादित है, जहाँ अनेक जातियाँ एवं जनजातियाँ निवास करतीं हैं। ऐसा विश्वास किया जाता है कि ये लोग भारतीय प्रायद्वीप के मूल निवासी हैं। यही वजह है कि उन्हें 'आदिवासी' कहा जाता है। भारत में इनकी आबादी अफ्रीका के बाद सर्वाधिक है। आदिवासियों और वनों के बीच एक सहजीवी सम्बन्ध है। जनजातीय अर्थव्यवस्था एवं संस्कृति के साथ वनों का सम्बन्ध बहुत ही गहरा है। भोजन, ईंधन, लकड़ी, घरेलू सामग्री, जड़ी-बूटी, औषधियों, पशुओं के लिए चारा और कृषि औजारों की सामग्री के लिए ये वनों पर आश्रित रहते हैं। उनकी संस्कृति भी वनों से प्रभावित होती है। वे अनेक वृक्षों की पूजा करते हैं। वन्य समाज मे रहने वाले जनजातियों ने अपने आपको वर्ग के आधार पर नहीं बल्कि जातीय आधार पर समाज में रखा है। उदाहरण के लिए पहाड़िया, चेरो, कोल, उराँव, हो, संथाल, चुआर, खरिया, भील, मुंडा आदि।

भारत में भील सबसे बड़ी जनजाति है, जो मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, गुजरात, कर्नाटक, राजस्थान एवं त्रिपुरा राज्यों में पायी जाती है। गोंड इस देश की दूसरी बड़ी जनजाति है जो अधिकांशतः मध्य प्रदेश, आंध्र प्रदेश, महाराष्ट्र एवं गुजरात में पायी जाती है। संथाल भारत में तीसरी बड़ी जनजाति है जो बिहार, झारखंड, उड़ीसा एवं पश्चिम बंगाल में पायी जाती है। इन्हीं प्रदेशों में उरांव, मीना, मुंडा, खोंड आदि जनजातियाँ भी है।

अठारहवीं शताब्दी के पहले तक ये जनजातियाँ वन सम्पदा का प्रयोग अपने जीवीकोपार्जन के लिए करती थीं। इनका जीवन बहुत ही सीधा होता था और सामाजिक जीवन में ये लोग अहस्तक्षेप की नीति अपनाते थे। अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक ये विदेशियों के उपनिवेशवाद के शिकार बन गए। यही वजह थी कि उन्होंने उपनिवेशवाद के खिलाफ कई सशस्त्र विद्रोह किए, जिसकी पूर्णाहुति सन् 1857 की क्रांति एवं आगामी क्रांतियों में हुई। यद्यपि आगे चलकर उनके लिए कुछ सुधारात्मक आदेश पारित किए गए, फिर भी सीधे-साधे वन में जीवन व्यतीत करने

वाले आदिवासियों ने अस्त्र-शस्त्र का सहारा क्यों लिया यह जानने के लिए हमें वन्य समाज एवं उनकी तत्कालीन संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर ध्यान देना आवश्यक प्रतीत होता है।

6.1 राजनैतिक जीवन : अठारहवीं शताब्दी में वन्य समाज कबीलों में बँटा था। सुरक्षा की बढ़ती आवश्यकता के कारण प्रत्येक जनजाति एक मुखिया के तहत संगठित थी। मुखिया का मुख्य कर्तव्य कबीला को सुरक्षा प्रदान करना था। धीरे-धीरे ये मुखिया कबीलों पर अपना अधिकार जमाना शुरू कर दिए। इन्होंने अपने लिए बहुत से विशेषाधिकारों को भी प्राप्त करने में सफलता हासिल कर ली। जनजातियों का मुखिया बने रहने के लिए उनका युद्ध कौशल में निपुण होना एवं सुरक्षा देने के कार्य में सक्षम होना अनिवार्य था। इनकी स्वयं की शासन प्रणाली थी। शासन प्रणाली में सत्ता का विकेन्द्रीकरण किया गया था। परम्परागत जनजातीय संस्थाएँ वैधानिक, न्यायिक तथा कार्यपालिका शक्तियों से निहित थी। बिहार के सिंहभूम में 'मानिकी' व 'मुंडा' प्रणालियाँ और संथाल परगना में 'मांझी' व 'परगनैत' प्रणालियाँ आज भी प्रचलित हैं जिनका संचालन मुखियाओं द्वारा किया जाता है। अंग्रेजी शासन के समय उनके द्वारा प्रलोभन दिए जाने के कारण अधिक संख्या में ये मुखिया अंग्रेजों के हिमायती होने लगे और कठोरता से राजस्व वसूली में उनका साथ देने लगे। हालाँकि बाद में राजनैतिक दृष्टिकोण से जब आदिवासियों का शोषण किया जाने लगा तब उन्होंने भी कई जगहों पर समाज के लोगों का साथ दिया ।

राजनैतिक जीवन :

- मुखिया के तहत कबीलों का गठन
- सत्ता का विकेन्द्रीकरण
- राजस्व वसूली के लिए सिंहभूम में 'मानकी' एवं 'मुण्डा' प्रणाली
- संथाल परगना में 'माझी' एवं 'परगनैत' प्रणाली

आदिवासी सीधे-साधे सरल प्रकृति के थे। आमतौर पर वे स्वयं को शेष समाज से अलग रखते थे, लेकिन अंग्रेजों ने उनके सामाजिक जीवन में हस्तक्षेप किया। आर्थिक लाभ के दृष्टिकोण से उन्होंने कबीला के सरदारों को जमींदार का दर्जा दे दिया। वन्य समाज के अन्दर ईसाई मिशनरियों के घुसपैठ को भी बढ़ावा दिया गया, जिससे उनकी सामाजिक व्यवस्था अस्त व्यस्त हो गयी। जंगल से उनके गहरे रिश्ते को भी तोड़ दिया गया। वे जंगलों से लकड़ी काटते थे और उसका प्रयोग ईंधन के रूप में करते थे। पशुओं का चारा भी जंगलों के घास से इकट्ठा करते थे। उनका मुख्य शौक और मनोरंजन का साधन हिरण, तीतर और अन्य छोटे पशु- पक्षियों का शिकार करना था। इनका सामाजिक जीवन इतना सादा था कि ये स्वच्छन्दता पूर्वक जीवन बिताते थे। नाच और गाना इनका महत्वपूर्ण शौक था। ये खेती

सामाजिक जीवन :

- नृत्य, गान एवं शिकार में अभिरुचि
- 'सरहुल' मुख्य त्योहार
- आदिवासियों के शिकार पर प्रतिबन्ध
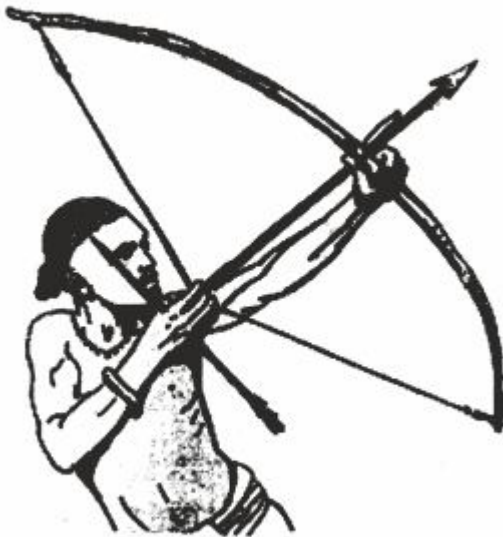
धनुष बाण से निशाना लगाता आदिवासियों युवक

नृत्य करता हुआ आदिवासी

-गृहस्थी करते थे। सामाजिक जीवन में उनके संगीत एवं नृत्यकला पर भी कृषि कार्य के विभिन्न पहलुओं का पूरा प्रभाव था। चैत्र शुक्ल तृतीया तिथि को उनका सबसे महत्वपूर्ण पर्व 'सरहुल' मनाया जाता था, जो आज भी प्रचलित है। आदिवासी समाज की महिलाएँ अपने समाज में पूर्णरूपेण स्वच्छन्द थीं, और जीवीकोपार्जन में वे पुरुषों का हाथ बँटाती थीं।

उपनिवेशवाद की भावना से प्रेरित होकर अंग्रेजी सरकार ने छोटे शिकार पर प्रतिबन्ध लगा दिया, जबकि बड़े जानवरों का शिकार करना मना नहीं था। अंग्रेजों की नजर में बड़े जंगली एवं बर्बर जानवर आदि समाज के प्रतीक चिह्न थे। उनका मानना था कि खतरनाक जानवरों को मारकर वे यहाँ के लोगों को सभ्य बनायेंगे। परिणाम यह हुआ कि जानवरों की कई प्रजातियाँ विलुप्त होने लगी। इस तरह वन्य जीवन के सामाजिक पर्यावरण को उन्होंने नष्ट भ्रष्ट करने की पूरी कोशिश की, जिससे उनके प्रति विरोध का भाव पैदा हुआ ।

आर्थिक जीवन : वन्य समाज के आर्थिक जीवन का आधार कृषि था। वे जगह बदल-बदल कर 'घुमंतू', 'झूम' या पोडू विधि से खेती करते थे। जब उन्हें लगता था कि उनके खेत अब उपजाऊ नहीं रह गए हैं तब वे जंगल

आर्थिक जीवन
- आर्थिक जीवन का आधार खेती
- 'झूम' या 'पोडू' विधि से खेती

साफ कर नई जमीन तैयार कर लेते थे। खेती की इस व्यवस्था से अंग्रेजों को लगान निश्चित करने और उनकी वसूली करने में मुश्किलों का सामना करना पड़ता था। अतः अंग्रेजी सरकार ने इस पर रोक लगा दी। जमीन पर अत्यधिक लगान और उसके वसूली के अत्याचारपूर्ण तरीकों ने आदिवासियों में उनके प्रति क्षोभ उत्पन्न किया। अनेक समुदायों को अपना गृह स्थान परिवर्तित करना पड़ा। बाद में ये लोग अंग्रेजों के खिलाफ कड़ा प्रतिरोध का प्रदर्शन किए।

आदिवासियों में खेती के अलावा अन्य उद्योग धन्धों का भी प्रचलन था। वे हाथी दाँत, बाँस, मसाले , रेशे, रबर, आदि के व्यापार के साथ- साथ लाह तैयार करने का काम भी करते थे। ये पलास, बैर एवं कुसुम के पेड़ पर लाह के कीड़े पालते थे और कारखाने में उससे लाह तैयार किया जाता था। सन्1870 से यहाँ लाह कारोबार की उन्नति होने लगी। ये लोग तसर उद्योग भी करते थे। उन्नीसवीं शताब्दी के आते-आते अंग्रेजों ने रेल की पटरी एवं रेल के डब्बे की सीट बनाने के लिए जंगलों की कटाई शुरू कर दी, जिससे आदिवासी जनजीवन पर कुठाराघात हुआ। डायट्रिच बैडिस नामक जर्मन वन विशेषज्ञ ने सन्1864 में 'वन सेवा' की स्थापना की तथा सन्1865 में 'भारतीय वन अधिनियम' पारित कर आदिवासियों के लिए पेड़ों की कटाई पर रोक लगा दिया गया एवं जंगल को लकड़ी उत्पादन के लिए सुरक्षित किया गया। इससे आदिवासियों के आर्थिक जीवन के साथ-साथ सामाजिक जीवन भी प्रभावित हुआ। अंग्रेजी सरकार ने यहाँ के जमीन से अब राजस्व प्राप्त करने के लिए जमींदारी व्यवस्था लागू की । अब जमींदार, महाजन और साहुकारों द्वारा ये आर्थिक शोषण के शिकार होने लगे। धीरे-धीरे वे किसान से मजूदर होते गए और उनकी आर्थिक स्थिति बद् से बद्तर होते चली गयी। उन्हें कहीं न्याय नहीं मिलता था। पुलिस भी उनकी मदद नहीं करती थी, उल्टे वह महाजनों का ही साथ देती थी। कर्ज के बदले उनके खेत, मवेशी आदि को महाजनों ने हड़प लिया। ऐसे में कभी-कभी इन आदिवासियों को स्वयं को भी गिरवी रखना पड़ता था। फलतः उनका आर्थिक एवं शारीरिक शोषण बढ़ गया। ऐसी परिस्थिति में उन्होंने वर्ग के आधार पर नहीं बल्कि जातीय आधार पर संथाल, कोल, मुंडा, आदि के रूप में अपने आपको संगठित किया। परन्तु इस संगठन के द्वारा कभी भी उन्होंने अपने समूह पर आक्रमण नहीं किया।

> - **हाथी दाँत, बाँस, मशाले, रेशे एवं रबर का व्यापार**
> - **लाह उद्योग की उन्नति।**
> - **सन् 1864 ई0 में 'वन सेवा' की स्थापना।**
> - **सन् 1865 ई0 में 'भारतीय वन अधिनियम' ।**
> - **अंग्रेजों द्वारा आर्थिक लाभ के लिए जमींदारी व्यवस्था लागू करना ।**

धार्मिक जीवन– वन्य समाज के ये आदिवासी शुरू से ही अहस्तक्षेप की नीति के पोषक थे। अपने समाज के अन्दर किसी भी तरह के विदेशी घुसपैठ को रोकने के लिए वे सशस्त्र तैयार

रहते थे। भारत में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने के विचार से वाणिज्यिक उपनिवेशवादी नीति का पालन करते हुए अंग्रेजों ने जनजातीय क्षेत्रों में प्रवेश करने का भरसक प्रयास किया, लेकिन बहुत समय तक वे सफल नहीं हो सके। तभी उन्होंने शिक्षा देने और लोगों को सभ्य बनाने के उद्देश्य से ईसाई मिशनरियों का घुसपैठ जनजातीय क्षेत्रों में कराया ताकि उनके प्रवेश को एक उचित माध्यम मिल जाय। कालान्तर में ये पादरी आदिवासी धर्म एवं संस्कृति की आलोचना करने लगे और उनका धर्म परिवर्तन करना आरम्भ कर दिए। बड़ी संख्या में आदिवासियों ने ईसाई धर्म को अपनाया और अपनी स्थितियों में सुधार की। शिक्षा पाने के कारण उनकी स्थिति में गुणात्मक परिवर्तन तो हुआ, लेकिन वे अपने अन्य भाइयों से घृणा करने लगे। आदिवासी इसे अपने सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में अंग्रेजों द्वारा किए गए अतिक्रमण समझ कर इसका प्रतिरोध करना शुरू किए। ऐसे ही परिवेश में वन्य समाज में व्याप्त धार्मिक भावनाओं ने कई क्रांतियों एवं नेताओं को जन्म दिया, जिन्होंने अपने क्षेत्र में अंग्रेजों के प्रति जेहाद का बिगुल बजाया। उन नेताओं का धार्मिक विश्वास था कि ईश्वर उनके कष्टों को दूर करेगा और विदेशियों के शोषण से उन्हें मुक्त करेगा। उनके पास वह जादुई ताकत है, जिससे दुश्मन की गोलियाँ बेअसर हो जायेंगी। इसी तरह का आत्म विश्वास उनके नेताओं में था, जिन्होंने सम्पूर्ण वन्य समाज के आदिवासियों को अंग्रेजों के खिलाफ आन्दोलन करने के लिए भड़काया। ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर अठारहवीं शताब्दी के मध्य में ही बिहार के तत्कालीन छोटानागपुर एवं संथालपरगना क्षेत्रों में प्रवेश करने के अंग्रेजों द्वारा प्रयासों का आदिवासियों ने बलपूर्वक तथा हिंसात्मक तरीकों से विरोध किया।

धार्मिक जीवन

- **ईसाई मिशनरियों की घुसपैठ एवं धर्म परिवर्तन के लिए आदिवासियों को प्रेरित करना**
- **धार्मिक भावना पर आघात से सभी जनजातियों में धार्मिक असंतोष**

पहाड़िया विद्रोह : यह जाति युद्धप्रिय थी। इनका निवास स्थान भागलपुर के राजमहल पहाड़ियों के क्षेत्र में था। यहाँ अंग्रेजों ने आरम्भ में मुखिया को जमींदार बना दिया, जिसको राजस्व वसूली का कार्य भी दिया। अंग्रेजों ने साहुकारों, ठेकेदारों, राजस्व, वन तथा पुलिस विभाग के अधिकारियों को इनका शोषण करने के लिए प्रेरित किया, जिसके परिणामस्वरूप इन्हें ऋण-ग्रस्तता तथा अपनी उपजाऊ भूमि का गैर आदिवासियों को हस्तांतरित करने के दौर से गुजरना पड़ा । इसने जनजातियों का आर्थिक आधार तहस-नहस कर दिया और उन्हें दरिद्र बना दिया। अत: भारत में पहली बार इस क्षेत्र में जनजातीय विद्रोह हुआ- अपने ही जमींदार के राजस्व नीति के विरोध में। इस विद्रोह का नेता तिलका मांझी था। यह भारत का पहला संथाली (तत्कालीन संथाल

परगना क्षेत्र) था, जिसने न सिर्फ अपने जमींदार का विरोध किया बल्कि अंग्रेजों पर भी हिंसात्मक कार्रवाई की। तिलका मांझी का जन्म 1750 ई० में भागलपुर प्रमंडल स्थित सुल्तानगंज के पास तिलकपुर गाँव में हुआ था। सन् 1779 में वह पहली बार भू-राजस्व की राशि कम करने एवं किसानों की भूमि जमींदार से छुड़वाने के लिए वहाँ सशस्त्र विद्रोह किया। जमींदारों की सहायता अंग्रेजी सेना द्वारा की गयी थी। अतः तिलका मांझी ने तिलापुर जंगल को अपना कार्यक्षेत्र बनाया, जहाँ से वह विरोधियों पर आक्रमण की योजना बनाता था। भागलपुर के प्रथम तत्कालीन कलक्टर अगस्टस क्लेवलैंड पर उसने सशस्त्र प्रहार किया। वह नहीं चाहता था कि वन्य समाज एवं पहाड़ी क्षेत्रों के जनजातीय समाज में कोई भी बाहरी व्यक्ति हस्तक्षेप करे, उनका शोषण करे और उनकी सामाजिक तथा धार्मिक भावनाओं को ठेस पहुँचाए। पहली बार कलक्टर पर शस्त्र चलाने वाला वह पहला संथाल था जिसने तीर एवं धनुष से सन् 1784 ई० में उसे जख्मी किया, जिससे बाद में क्लेवलैंड की मृत्यु हो गयी।

तिलका मांझी

हिंसात्मक कार्यों एवं अंग्रेजों विरोधी नीति के कारण उसे गिरफ्तार कर लिया गया और सन् 1785 ई० में भागलपुर में बीच चौराहे पर बरगद के पेड़ से लटका कर उसे फाँसी दे दी गयी। तिलका मांझी अपने क्षेत्र की आजादी के लिए शहीद हो गया। हालाँकि, उसके द्वारा किया गया विद्रोह असफल हो गया लेकिन इसने आगे के संथाल विद्रोह का मार्गदर्शन अवश्य किया। तिलका मांझी ने अंग्रेजों द्वारा शोषण और उत्पीड़न के खिलाफ लड़ते हुए अपने प्राण न्योछावर कर देश के लिए उदाहरण प्रस्तुत किया। जिस जगह पर उसे फाँसी दी गयी थी, आज वह तिलका मांझी चौक (भागलपुर) के नाम से जाना जाता है। अमर शहीद तिलका मांझी की मूर्ति गरीब किसानों के अधिकारों की रक्षा हेतु उनके प्राण की आहुति की कहानी कहता नजर आता है।

तमार विद्रोह– सन् 1789 ई० में छोटानागपुर के उरांव जनजाति ने जमींदारों के शोषण के खिलाफ आन्दोलन किया। इतिहास में यह तमार विद्रोह के नाम से जाना जाता है। यह सन् 1794 तक चलता रहा और अंग्रेजों की सहायता से इसे बहुत ही क्रूरतापूर्ण तरीके से दबा दिया गया। फिर भी विद्रोह की अग्नि समाप्त नहीं हुई। आगे चलकर इनका विरोध मुंडा और संथाल के साथ मिलकर प्रदर्शित हुआ।

चेरो विद्रोह– बिहार में पलामू क्षेत्र में रहने वाले चेरो जनजाति ने अपने राजा के खिलाफ विद्रोह किया। उस समय चुड़ामन राय उनका शासक था। अंग्रेजों की शोषण करने के खिलाफ भूषण सिंह के नेतृत्व में चेर जनजाति के लोगों ने सन् 1800 ई० में खुला विद्रोह किया। राजा की मदद करने के लिए अंग्रेजी सेना बुलाई गयी। कर्नल जोन्स के नेतृत्व में आई सेना ने इस विद्रोह को दबा दिया और सन् 1802 ई० में भूषण सिंह को फाँसी दे दी गयी।

विभिन्न जनजातीय विद्रोह

- पहाड़िया विद्रोह
- तमार विद्रोह
- चेरो विद्रोह
- चुआर विद्रोह
- हो विद्रोह
- कोल विद्रोह
- भूमिज विद्रोह
- संथाल विद्रोह
- मुण्डा विद्रोह
- कंध विद्रोह

चुआर विद्रोह– चुआर जनजाति तत्कालीन बंगाल प्रांत के मिदनापुर, बाँकुड़ा, मानभूम आदि क्षेत्रों में पायी जाती थी। अंग्रेजों की लगान व्यवस्था के खिलाफ इन लोगों में भी असंतोष था। अतः मिदनापुर स्थित करणगढ़ की रानी सिरोमणी के नेतृत्व में चुआरों ने विद्रोह का झंडा खड़ा किया। अंग्रेजों के खिलाफ यह विद्रोह एक लम्बे समय तक जारी रहा। लेकिन सन् 1798 ई० में यह चरमोत्कर्ष पर था। सरकार ने 6 अप्रैल 1799 को रानी सिरोमणी को गिरफ्तार कर कलकत्ता जेल भेज दिया। परन्तु इससे चुआरों के विद्रोह की अग्नि शांत नहीं हुई। आगे चलकर ये भूमिज जाति के लोगों के साथ गंगा नारायण द्वारा किए गए विद्रोह में शामिल हो गए।

'हो' विद्रोह– सन् 1820-21 ई० में छोटानागपुर के ही सिंहभूम जिले में बहुत बड़ा विद्रोह हुआ। यहाँ का राजा जगन्नाथ सिंह था, जिसने अंग्रेजों का संरक्षण स्वीकार कर लिया था। 'हो' जाति के लोगों ने अंग्रेजों की सहायता से राजा की बढ़ती हुई शक्ति एवं शोषण का विरोध किया। इसे अंग्रेजी सेना ने क्रूरतापूर्ण ढंग से दबा दिया। आगे चलकर इन लोगों ने भी मुंडा विद्रोह में स्वयं को शामिल कर लिया।

कोल विद्रोह– कोल विद्रोह की शुरूआत छोटानागपुर क्षेत्र में मुंडा, उरांव एवं अन्य जनजातियों के द्वारा सन् 1831 ई० में हुआ। भारत के इतिहास में इस विद्रोह की एक अलग महत्ता है। प्रारम्भ से ही यह जनजाति शांतिपूर्ण कबिलाई जीवन व्यतीत कर रही थी। बाद में अंग्रेजों की लगान व्यवस्था एवं शोषण नीति उनके जमींदारों द्वारा उनपर लागू कराया गया, तब कोलों ने जमींदार के रूप में 'मानकी' या 'महतो' का विरोध किया। उनके कबीले की प्रथा के अनुसार धर्म निरपेक्ष कार्यों के सम्पादन के लिए 'पाहन' नामक पद सृजित किया गया था। 'मानकी' या 'महतो' उनकी सहायता के लिए बनाये गए थे। ये मानकी जो कभी कोलों का सहयोगी हुआ करते थे,

अंग्रेजों की नीति के कारण जमींदार बन बैठे और लगान नहीं चुकाने के कारण उनका सामाजिक तथा आर्थिक शोषण करना प्रारंभ कर दिए। बड़ी संख्या में हिन्दू, सिक्ख एवं मुसलमान व्यापारियों का प्रवेश इस क्षेत्र में हो चुका था, जिन्होंने धीरे-धीरे सूदखोर महाजन का कार्य करना प्रारंभ किया और धीरे-धीरे कोलों का जमीन उनके हाथ से निकलने लगा। ऐसी स्थिति में जल्द ही जमींदार और दिकू (गैर आदिवासी) के खिलाफ कोलों ने विद्रोह किया । इस विद्रोह की लपट पलामू क्षेत्र में फैलनी शुरू हुई। अनुमानत: 800 से 1000 आदमी इस विद्रोह में मारे गए। जब कोल विद्रोह ने तीव्र रूप धारण कर लिया तब अंग्रेजों का ध्यान इस तरफ आकृष्ट हुआ। यद्‌यपि विद्रोह तो दबा दिया गया लेकिन अंग्रेजों को यह समझ में आ गया कि कोलों के समाज को नजरअन्दाज नहीं किया जा सकता है। इस विद्रोह का एक परिणाम तो यह अवश्य हुआ कि कोलों के लिए शोषण विहीन शासन की स्थापना हेतु 'साउथ वेस्ट फ्रंटियर एजेंसी' कायम की गयी और फौजदारी न्यायालय को सरल एवं सहज बनाने का आश्वासन दिया गया। आगे चलकर ये कोल भारत की स्वतंत्रता आंदोलन में प्रेरणा के महत्वपूर्ण स्रोत के रूप में साबित हुए।

भूमिज विद्रोह– सन् 1832 ई० में वीरभूम के जमींदार के पुत्र गंगा नारायण के नेतृत्व में भूमिज विद्रोह की शुरूआत हुई। यह 'गंगा नारायण हंगामा' के नाम से इतिहास में जाना जाता है। अंग्रेजी सरकार ने इनपर इतना अधिक राजस्व का बोझ डाला था कि उसके खिलाफ 'कोलों' एवं 'हो' के समर्थन से इन्होंने भी औपनिवेशिक शासन का विरोध किया। उपरोक्त सारी जनजातियों ने सन् 1857 ई० के सिपाही विद्रोह में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। जब विद्रोह शुरू हुआ तब ये चाइबासा के बटालियन की सेना में शामिल थे। इन्होंने राँची और डोरंडा के खजानों को लूटा तथा जेल के फाटक को खोल दिया। अंग्रेजों का हर सम्भव विरोध इन्होंने अपने अधिकारों की सुरक्षा के लिए किया।

संथाल विद्रोह : आदिवासियों द्वारा किए गए विद्रोहों में संथाल विद्रोह बहुत महत्वपूर्ण था, क्योंकि विद्रोह की पहली शुरूआत इसी क्षेत्र के लोगों द्वारा की गयी थी और यहीं के विद्रोहियों ने आगे चलकर सन् 1857 ई० की क्रांति को प्रभावित किया। भागलपुर से राजमहल के बीच का क्षेत्र, जो दामन-ए-कोह के नाम से जाना जाता था, संथाल बहुल क्षेत्र था। गैर-आदिवासी एवं अंग्रेजों के अत्याचार से तंग आकर यहाँ के संथालों ने अपने आपको संगठित कर लिया। संथालों को उत्प्रेरित करने का कार्य भगनाडीह गाँव के चुलू संथाल के चार पुत्र-सिद्धू, कान्हू, चाँद और भैरव ने किया। सिद्धू ने अपने आपको ठाकुर का अवतार घोषित किया। सन् 1854 ई० तक आते-आते आदिवासियों ने चिरस्थाई प्रबन्ध द्वारा अत्यधिक राजस्व वसूली, सामाजिक प्रतिबन्ध और कई तरह के आर्थिक कष्टों से छुटकारा पाने के लिए कई सभाओं का आयोजन करना आरम्भ कर दिया।

सिद्धू

30 जून 1855 को भगनाडीह गाँव में संथालों की एक सभा आयोजित की गयी। इसमें 400 गाँवों के 10,000 संथाल अपने अस्त्र-शस्त्र के साथ एकत्र हुए और सभा में ठाकुर का आदेश पढ़कर सुनाया गया। यह आदेश था-'जमींदारी, महाजनी तथा सरकारी अत्याचारों का विरोध करना तथा अंग्रेजी शासन को समाप्त कर सतयुग का राज, न्याय और धर्म पर अपना राज करने के लिए खुला विद्रोह किया जाये। सिद्धू और कान्हू ने स्वतंत्रता की घोषणा भी की। यह कहा गया कि 'अब हमारे ऊपर कोई सरकार नहीं है, हाकिम नहीं है, संथाल राज्य स्थापित हो गया है। इन आदिवासियों ने मिलकर गाँवों में जुलूस निकाले।

जुलाई, 1855 ई० में स्त्री एवं पुरुषों के आह्वान पर संथालों का विद्रोह आरम्भ हो गया। बहुत जल्द ही लगभग 60 हजार हथियार बंद संथालों को इकट्ठा कर लिया गया। इसके लिए हजारों आदिवासियों को तैयार रहने के लिए भी कहा गया। सशस्त्र विद्रोह का आरम्भ दीसी नामक स्थान में अत्याचारी दरोगा महेश लाल की हत्या से आरम्भ हुआ। सरकारी दफ्तरों, महाजनों के घर तथा अंग्रेजों की बस्तियों पर आक्रमण किया गया।

संथालों का सबसे बड़ा असंतोष भागलपुर से लेकर वर्द्धमान तक की रेल परियोजना थी। इसमें ठेकेदारों ने बड़े पैमाने पर मजदूरों को काम पर लगाया, पर उचित मजदूरी नहीं दी, जब संथालों ने काम करने से इन्कार कर दिया तब उन्हें बुरी तरह पीटा गया। विद्रोहियों ने रेल ठेकेदारों एवं परियोजना के इंजीनियरों के साथ बुरा व्यवहार किया क्योंकि वे उन्हें बेगार मजदूरी के लिए बाध्य करते थे। उनके द्वारा भागलपुर और राजमहल के बीच रेल सेवा भंग कर दी गयी। अनेक अंग्रेज मार डाले गए। संथालों ने उन सभी लोगों और व्यवस्थाओं पर हमला किया जो गैर आदिवासी (दिकू) और उपनिवेशवादी सत्ता के शोषण के खिलाफ थे।

आदिवासियों के इस तरह के संगठित विद्रोह से अंग्रेज डर गए और वे कलकत्ता तथा पूर्णिया से सेना बुलाकर इस विद्रोह को कुचल डाले। कान्हू सहित 5000 से अधिक संथाल मार दिए गए। अंग्रेजों की बर्बरता ने संथालों के गाँव के गाँव उजाड़ डाले और उपद्रवग्रस्त क्षेत्रों में मार्शल लॉ लागू किया गया। सिद्धू और अन्य नेता गिरफ्तार कर लिए गए। इस विद्रोह में संथालों ने अदम्य साहस का परिचय दिया, परन्तु फिर भी विद्रोह असफल हो गया क्योंकि युद्ध की

आधुनिक तकनीकी इनके पास नहीं थी। ये अधिकांशतः तीर-धनुष से ही लड़ते थे। जब सन् 1857 की क्रांति की शुरूआत हुई तब ये संथाल विद्रोहियों के साथ थे और अंग्रेजों के खिलाफ उनका साथ दे रहे थे।

यद्यपि संथाल विद्रोह से आदिवासियों के जीवन तथा स्थिति में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया लेकिन अंग्रेजी सरकार को इस क्षेत्र के लिए नयी प्रशासनिक नीति को अपनाना पड़ा। सन् 1885 ई० में 'अधिनियम 37' पारित किया गया जिसके अनुसार संथाल परगना जिला बनाकर उसे 'वहिर्गत क्षेत्र' (Excluded Area) घोषित किया गया और इसको प्रत्यक्ष रूप से गवर्नर जनरल के शासन के अधीन रखा गया।

मुंडा विद्रोह– सन् 1899- 1900 में छोटानागपुर में मुंडा आदिवासियों ने उपनिवेशवाद का विरोध किया। इस विद्रोह का नेतृत्व बिरसा मुंडा ने किया। बिरसा मुंडा का जन्म 15 नवम्बर 1874 को पलामू जिले के तमाड़ के निकट उलिहातु नामक गाँव में हुआ था। बचपन से ही वह कुशाग्र बुद्धि का था। उसने आदिवासियों की गरीबी और शोषण पर गहन चिंता व्यक्त की और इसके लिए औपनिवेशिक शासन के भू-राजस्व प्रणाली, न्यायप्रणाली एवं शोषणपूर्ण नीतियों का समर्थन करने वाले जमींदारों के प्रति आक्रोशित हुआ। उस पर धर्म का भी बहुत प्रभाव था तथा उसे ईश्वर में अटूट विश्वास था। अतः सन् 1895 ई० में उसने अपने आपको ईश्वर का दूत घोषित कर दिया। धार्मिक आन्दोलन के आधार पर बिरसा मुंडा ने सभी आदिवासियों को हथियार बन्द करना शुरू कर दिया और उन्हें उनके अधिकारों के प्रति सजग कराया। मुंडा जाति के साथ-साथ अन्य जनजातियों में भी उसने जागरूकता पैदा की और उन्हें संगठित किया। 25 दिसम्बर सन् 1899 ई० को उसने ईसाई मिशनरियों पर आक्रमण किया। 8 जनवरी सन् 1900 ई० को ब्रिटिश सरकार द्वारा इस विद्रोह को बुरी तरह कुचल दिया गया। 200 पुरुष एवं महिला मारे गए तथा 300 लोग बन्दी बना लिए गए। कई नेताओं को भी गिरफ्तार कर लिया गया। बिरसा मुंडा की गिरफ्तारी के लिए सरकार की तरफ से 500 रुपये इनाम की घोषणा की गयी और परिणामस्वरूप 3 मार्च सन् 1900 ई० को बिरसा गिरफ्तार कर लिया गया और राँची जेल में जून में हैजा से उसकी मृत्यु हो गयी।

बिरसा मुंडा

ब्रिटिश सरकार की दमन नीति ने बिरसा मुंडा का विद्रोह तो कुचल दिया, लेकिन इस आन्दोलन का प्रभाव अंग्रेजी शासन पर महत्वपूर्ण रूप से पड़ा। ब्रिटिश सरकार के लिए यह एक चेतावनी थी। सरकार ने मुंडा एवं अन्य जनजातियों के असंतोष को दूर करने की ठोस व्यवस्था की । बिरसा आन्दोलन का परिणाम यह हुआ कि जनजातियों के बीच एक जिम्मेवार और उत्तरदायी शासन स्थापित हुआ। आगे चलकर यही आन्दोलन स्वंतत्रता आन्दोलन में भाग ले रहे ताना भगत के आन्दोलन (सन् 1914) का प्रेरणा स्रोत बना। आदिवासियों के लिए कई सुधारात्मक कार्य सरकार द्वारा किए गए।

कंध विद्रोह– उपरोक्त विद्रोह के अलावे उड़ीसा राज्य का कंध विद्रोह भी बहुत महत्वपूर्ण है। कंध आदिवासी विशाल पहाड़ी क्षेत्र में रहते थे, जो तत्कालीन मद्रास प्रांत तथा बंगाल तक फैला था। इस जाति में विपत्तियों एवं आपदाओं से मुक्ति प्राप्त करने के लिए 'मरियाह प्रथा' (मानव बलि प्रथा) का प्रचलन था। सन् 1837 ई० में ब्रिटिश सरकार ने इसे रोकने का प्रयास किया। उस समय चक्र बिसोई नामक नेता ने इसका विरोंध किया। चक्र बिसोई का जन्म घुमसार के ताराबाड़ी नामक गाँव में हुआ था। उसने अंग्रेजों पर आदिवासियों के सामाजिक एवं धार्मिक प्रथाओं में हस्तक्षेप करने का आरोप लगाया और उनका प्रबल विरोध किया। सन् 1857 ई० की क्रांति में कंध आदिवासियों ने भी अंग्रेजों के खिलाफ सैन्य संचालन किया।

उड़ीसा के ही भुइयां एवं जुआंग आदिवासियों ने वहाँ के राजा की सामन्तवादी एवं दमनकारी नीति के खिलाफ विद्रोह किया। सन् 1867-68 ई० में धरनीधर नायक के नेतृत्व में विद्रोह का झंडा खड़ा किया गया।

भारत के अन्य वन्य प्रदेशों में भी औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ विद्रोह हुआ। सन् 1879-80 ई० में आंध्र प्रदेश के आदिवासियों ने अत्यधिक लगान वसूली के खिलाफ तथा 'वेट्टी प्रथा' (बलात मजदूर प्रथा) के खिलाफ विद्रोह किया। मध्य प्रांत के भील तथा गोंड जातियों ने भी अपने अस्तित्व के लिए ब्रिटिश शासन के प्रतिरोध में आन्दोलन किया।

परिणामस्वरूप, सन् 1935 ई० में तत्कालीन विधान सभा द्वारा जनजाति के लिए शिक्षा और आरक्षण का प्रस्ताव पारित किया गया। स्वतंत्र भारत के संविधान ने भारत की जनजातियों को धारा 342 में कमजोर वर्ग का दर्जा देकर उनके लिए सभी तरह की सुविधाएँ एवं आरक्षण की व्यवस्था की है। सन् 1952 ई० में सरकार ने 'नई वन नीति' बनायी जिसका समय-समय पर संशोधन भी किया जाता रहा है। यह वनों की रक्षा तथा आदिवासियों के अधिकारों की रक्षा के लिए उठाया गया भारत सरकार का एक महत्वपूर्ण कदम है।

यद्यपि वन्य समाज में जीवन व्यतीत करने वाले आदिवासी औपनिवेशिक शोषण से तो मुक्त हो गए लेकिन आंदोलन थमा नहीं, सिर्फ स्वरूप में परिवर्तन आ गया। यह आन्दोलन क्षेत्रवादी आन्दोलन में बदल गया और वे अलग राज्य की मांग करना शुरू कर दिए। भारत सरकार ने उनकी लम्बित माँगों को ध्यान में रखते हुए मध्य प्रदेश राज्य का पुनर्गठन करके 1 नवम्बर सन् 2000 ई० को आदिवासी बहुल क्षेत्र का एक पृथक राज्य छत्तीसगढ़ बनाया। इसी तरह 15 नवम्बर सन् 2000 ई० को बिहार राज्य का पुनर्गठन करके आदिवासी बहुल क्षेत्र झारखंड को एक अलग राज्य का दर्जा दे दिया गया।

इस तरह हम देखते हैं कि वन्य समाज में निवास करने वाली जनजातियों ने औपनिवेशिक शोषण के खिलाफ एक संघर्षपूर्ण लड़ाई लड़ी, जिसने भविष्य में उनके लिए सुधार कार्यों का मार्ग प्रशस्त किया।

अभ्यास

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न

1. भारतीय वन अधिनियम कब पारित हुआ ?

(क) 1864 (ख) 1865
(ग) 1885 (घ) 1874

2. तिलका मांझी का जन्म किस ई0 में हुआ था?

(क) 1750 (ख) 1774
(ग) 1785 (घ) 1850

3. तमार विद्रोह किस ई0 में हुआ था?

(क) 1784 (ख) 1788
(ग) 1789 (घ) 1799

4. 'चेरो' जनजाति कहाँ की रहने वाली थी?

(क) राँची (ख) पटना
(ग) भागलपुर (घ) पलामू

5. किस जनजाति के शोषण विहिन शासन की स्थापना हेतु 'साउथ वेस्ट फ्रंटियर एजेंसी' बनाया गया था?

(क) चेरो (ख) हो
(ग) कोल (घ) मुण्डा

6. भूमिज विद्रोह कब हुआ था?

(क) 1779 (ख) 1832

(ग) 1855 (घ) 1869

7. सन् 1855 के संथाल विद्रोह का नेता इनमें से कौन था ?

(क) शिबू सोरेन (ख) सिद्धू

(ग) बिरसा मुंडा (घ) मंगल पांडे

8. बिरसा मुंडा ने ईसाई मिशनरियों पर कब हमला किया ?

(क) 24 दिसम्बर 1889 (ख) 25 दिसम्बर 1899

(ग) 25 दिसम्बर 1900 (घ) 8 जनवरी 1900

9. भारतीय संविधान के किस धारा के अन्तर्गत आदिवासियों को कमजोर वर्ग का दर्जा दिया गया है ?

(क) धारा 342 (ख) धारा 352

(ग) धारा 356 (घ) धारा 360

10. झारखंड को राज्य का दर्जा कब मिला ?

(क) नवम्बर 2000 (ख) 15 नवम्बर 2000

(ग) 15 दिसम्बर 2000 (घ) 15 नवम्बर 2001

II. खाली जगहों को भरें :

1. जनजातियों की सर्वाधिक आबादी .... में है।
2. अठारहवीं शताब्दी में वन्य समाज कई .... में बँटा था।
3. वन्य समाज में शिक्षा देने के उद्देश्य से .... में घुसपैठ की।
4. जर्मन वन विशेषज्ञ डायट्रिच बैडिस ने सन् 1864 ई० में .... की स्थापना की।
5. .... पहला संथाली था, जिसने अंग्रेजों पर हथियार उठाया।
6. 'हो' जाति के लोग छोटानागपुर के .... के निवासी थे।
7. भागलपुर से राजमहल के बीच का क्षेत्र .... कहलाता था।
8. सन् .... ई० में संथाल विद्रोह हुआ ।

9. बिरसा मुंडा का जन्म .... को हुआ था ।

10. छत्तीसगढ़ राज्य का गठन .... को हुआ था ।

III. लघु उत्तरीय प्रश्न

1. वन्य समाज की राजनैतिक स्थिति पर प्रकाश डालें ।
2. वन्य समाज का सामाजिक जीवन कैसा था ?
3. अठारहवीं शताब्दी में वन्य समाज का आर्थिक जीवन कैसा था?
4. अठारहवीं शताब्दी में ईसाई मिशनरियों ने वन्य समाज को कैसे प्रभावित किया ?
5. 'भारतीय वन अधिनियम' का क्या उद्देश्य था ?
6. 'चेरो' विद्रोह से आप क्या समझते हैं ?
7. 'तमार' विद्रोह क्या था ?
8. 'चुआर' विद्रोह के विषय में लिखें।
9. उड़ीसा के जनजाति के लिए चक्र बिसोई ने क्या किए?
10. आदिवासियों के क्षेत्रवादी आन्दोलन का क्या परिणाम हुआ?

IV. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. अठारहवीं शताब्दी में भारत में जनजातियों के जीवन पर प्रकाश डालें ।
2. तिलका मांझी कौन थे? उसने आदिवासी क्षेत्र के लिए क्या किया ?
3. संथाल विद्रोह से आप क्या समझते हैं? सन् 1857 ई० के विद्रोह में उनकी क्या भूमिका थी ?
4. मुंडा विद्रोह का नेता कौन था । औपनिवेशिक शोषण के विरुद्ध उसने क्या किया ?
5. वे कौन से कारण थे, जिन्होंने अंग्रेजों को वन्य-समाज में हस्तक्षेप की नीति अपनाने के लिए वाध्य किया ?

इकाई-7

शांति के प्रयास

राष्ट्रसंघ (League of Nations) :

प्रथम विश्व युद्ध 1918 ई० में समाप्त हुआ। परन्तु इस युद्ध की विभीषिका से उत्पन्न समस्याएँ विजित राष्ट्रों के साथ-साथ सम्पूर्ण विश्व के लिए चुनौती भरी थी। युद्ध के उपरांत संसार के सभी नेताओं की इच्छा थी कि विश्व में शांति की स्थापना हो। यद्यपि इस समय तक यूरोप में किसी ऐसी प्रभावशाली संस्था का अभाव था, जो पारस्परिक वार्त्तालाप के माध्यम से विभिन्न राष्ट्रों के झगड़ों का समाधान कर युद्ध को टालने का सार्थक प्रयास करती। अतः युद्ध के आरम्भ से ही इंग्लैण्ड, फ्रांस, अमेरिका आदि देशों ने इस बात की आवश्यकता पर बल दिया कि विश्व में शांति एवं सुरक्षा बनाए रखने के लिए एक अंतर्राष्ट्रीय संस्था का गठन हो। परन्तु युद्ध के तनाव भरे माहौल में यह संभव नहीं था। अतएव 1919 ई० में युद्ध की समाप्ति के उपरांत पेरिस में हुए शांति-सम्मेलन में राष्ट्र-संघ की स्थापना की नींव पड़ी। इसका मुख्य श्रेय अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति **'वुड्रो विल्सन'** को जाता है, जिन्होंने अपने '14 सूत्री' प्रस्तावों में किसी अंतर्राष्ट्रीय संस्थान की स्थापना की अनिवार्यता पर बल दिया। अंततः विभिन्न योजनाओं को मिलाकर 10 June 1920 ई० को राष्ट्रसंघ (League of Nations) अस्तित्व में आया।

राष्ट्रसंघ के उद्देश्य :

राष्ट्रसंघ की स्थापना का उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय शांति की स्थापना तथा युद्ध से उत्पन्न समस्याओं का शांतिपूर्ण समाधान करना था। इसी के निमित्त राष्ट्रसंघ द्वारा अंतर्राष्ट्रीयता के प्रति विश्वास पैदा करने तथा युद्ध के पूर्व एवं बाद में की गई संधियों को लागू करवाने का प्रयास किया गया। युद्धजनित आर्थिक तथा सामाजिक समस्याओं को दूर करना भी राष्ट्रसंघ की प्राथमिकताओं में शामिल था।

राष्ट्रसंघ के सदस्य राष्ट्र :

चूँकि इस संस्था की स्थापना युद्ध के उपरांत हुई थी। फलत: प्रारम्भ में इसमें विजित अर्थात् मित्र राष्ट्र(फ्रांस, इंग्लैण्ड, रूस आदि) तथा युद्ध के दौरान तटस्थ रहने वाले कुछ राष्ट्र ही शामिल थे। जिनकी संख्या 31 के करीब थी। बाद में इसके सदस्यों की संख्या 60 हो गई। राष्ट्रसंघ की सदस्यता प्राप्त करने के लिए यह आवश्यक था कि वह देश स्वतंत्र तथा प्रभुत्वसम्पन्न हो तथा राष्ट्रसंघ के दो तिहाई सदस्य उसे संघ में शामिल करने पर सहमत हों।

जेनेवा में राष्ट्रसंघ की 10 वीं बैठक

राष्ट्रसंघ के अंग :

राष्ट्रसंघ की प्रथम धारा में सदस्य राष्ट्रों की सूची एवं दूसरी धारा में इसके तीन प्रमुख अंगों की चर्चा थी-

- व्यवस्थापिका सभा (असेम्बली)
- परिषद् (काउन्सिल)
- सचिवालय (सेक्रेटेरियट)

इसके अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय, अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन आदि भी प्रमुख अंग थे।

राष्ट्रसंघ के अंतर्गत विभिन्न कार्यों को सफलतापूर्वक निष्पादित करने के लिए विविध आयोग जैसे-संरक्षण आयोग, सैनिक आयोग आदि थे।

व्यवस्थापिका सभा : (असेम्बली)- यह राष्ट्रसंघ की प्रतिनिधि सभा थी। जिसमें सदस्य देशों के प्रतिनिधि उपस्थित रहते थे। प्रत्येक राष्ट्र को एक वोट देने का अधिकार था। सदन के कार्य करने की भाषा फ्रेंच तथा इंग्लिश थी। इसके कार्यों के अंतर्गत नये राष्ट्रों को सदस्यता प्रदान करना, राष्ट्रसंघ के विधान की समीक्षा तथा संशोधन करना, अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय के न्यायाधीशों एवं महासचिव की नियुक्ति पर अंतिम अनुमोदन आदि करना था। असेम्बली किसी भी राष्ट्र के आंतरिक मामले में हस्तक्षेप नहीं करती थी। यद्यपि अंतर्राष्ट्रीय मसलों पर वाद-विवाद एवं विचार-विमर्श होता था। सभी निर्णय प्रस्ताव पारित कर बहुमत से लिये जाते थे।

परिषद् :- (काउन्सिल)- इसकी भूमिका कार्यकारिणी परिषद् के रूप में थी। इसमें दो तरह के सदस्य होते थे- स्थाई और अस्थाई। **इंग्लैंड, फ्रांस, जापान तथा इटली इसके संस्थापक एवं स्थायी सदस्य थे।** बाद में जर्मनी तथा रूस को भी इसमें स्थायी सदस्यता मिली। अस्थाई सदस्य के रूप मे 9 छोटे-छोटे राज्य थे। परिषद् को व्यवस्थापिका सभा की तरह यह भी अधिकार था कि वह राष्ट्रसंघ के उद्देश्यों के अंतर्गत सभी विषयों पर विचार करे और कोई ठोस कदम उठाये। इस संदर्भ में उसकी कार्य एवं भूमिका एसेम्बली से भी अधिक प्रभावशाली थी। जर्मनी के सार तथा डानजिंग क्षेत्रों जिसमें अल्पसंख्यक निवास करते थे, के प्रशासन का कार्य, युद्ध एवं शांति से संबंधित महत्वपूर्ण मुद्दों पर निर्णय लेना, सदस्यों को आदेश देना एवं महासचिव को मनोनीत करना आदि इसके प्रमुख कार्य थे ।

अमेरिका इसके संस्थापक सदस्यों में था, परन्तु इसने इसकी सदस्यता स्वीकार नहीं की इस प्रकार प्रारंभ में चार स्थायी सदस्य ही रहे, जिसका बाद में विस्तार हुआ।

सचिवालय :- राष्ट्रसंघ के प्रशासकीय कार्यों के लिए एक सचिवालय कायम किया गया था। जिसका प्रधान कार्यालय 'जेनेवा' में था। इसके अंतर्गत 12 विभाग थे जो अंतर्राष्ट्रीय स्तर के आर्थिक, राजनैतिक एवं कूटनीतिक मसलों पर कार्य करती थी। यह उन सभी संधियों का पंजीकरण एवं मसविदा तैयार करती थी जिसका संबंध राष्ट्रसंघ के सदस्य राष्ट्रों से होता था।

अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय :- अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय की स्थापना का उद्देश्य विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय राजनैतिक एवं कूटनीतिक झगड़ों एवं विवादों का निपटारा करना था। जिसका मुख्यालय हॉलैंड (आधुनिक नीदरलैंड) के एक शहर **हेग** में स्थापित किया गया। यह असेम्बली को महत्वपूर्ण मसलों पर राय तथा राष्ट्रसंघ के विभिन्न विधानों की व्याख्या भी करती थी। परन्तु इसके निर्णय बाध्यकारी नहीं थे।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन :- प्रथम विश्व युद्ध का काल (1914-1918) यूरोप में समाजवादी तथा मजदूर आन्दोलन के विकास का काल था। क्योंकि युद्ध में अधिशेष उत्पादन की आवश्यकता ने औद्योगिक श्रमिकों की महत्ता को बढ़ा दिया था। इसे 1917 की **रूसी क्रांति (बोल्शेविक क्रांति)** से भी बल मिला और इस तरह यूरोपीय देशों में मजदूरों की दयनीय आर्थिक एवं सामाजिक स्थिति को बेहतर बनाने की आवश्यकता महसूस की गई। अतएव युद्ध के बाद राष्ट्रसंघ के तत्वावधान में मजूदरों के हितों की देखरेख तथा उनकी दशा सुधारने के लिए अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन की स्थापना की गई। जिसका मुख्यालय **जेनेवा** में था।

राष्ट्रसंघ द्वारा शांति के प्रयास :- राष्ट्रसंघ की स्थापना का उद्देश्य अंतर्राष्ट्रीय शांति और परस्पर सहयोग था। यद्यपि ये कार्य मुख्यत: राजनैतिक गतिविधियों के अंग थे, तथापि इसके आर्थिक एवं सामाजिक पक्ष भी कम नहीं थे। राजनैतिक गतिविधि के अंतर्गत-अंतर्राष्ट्रीय विवादों को हल करने, नि:शस्त्रीकरण एवं आक्रमणकारी राष्ट्रों पर अंकुश लगाने में भले ही राष्ट्रसंघ असफल रहा हो, परंतु युद्धजनित समस्याओं को समाप्त करने में राष्ट्रसंघ की काफी सराहनीय भूमिका रही। इस संदर्भ में राष्ट्रसंघ ने कई महत्वपूर्ण कार्य किए। चूँकि राष्ट्रसंघ का प्रथम कार्य युद्ध की परिस्थिति को रोकना था, अत: प्रारम्भिक छोटे-मोटे झगड़ों को सुलझाने में राष्ट्रसंघ सफल रहा। अपने 10-15 वर्षों की छोटी अवधि में ही इसने लगभग 40 छोटे-बड़े राजनीतिक झगड़ों की जाँच कर अपना निर्णय दिया। इसमें राष्ट्रसंघ द्वारा **समझौता, मध्यस्थता** तथा **अनुरोध** की नीति का अवलम्बन किया गया।

अंतर्राष्ट्रीय विवादों को सुलझाने में भूमिका :- इस कार्य में राष्ट्रसंघ के प्रयास सराहनीय एवं सफल कहे जा सकते हैं। जैसे- 1920 में स्वीडेन और फिनलैंड के मध्य उठे ऑलैंड द्वीप विवाद, जर्मनी एवं पोलैंड के मध्य उठे साइलेशिया विवाद तथा लिथुआनिया की

राजधानी विलना (Vilna) को लेकर पोलैंड एवं लिथुआनिया के मध्य विवाद को सुलझाने में राष्ट्रसंघ सफल रहा। 1995 ई० में यूनान और बुल्गरिया के मध्य शुरू हुए युद्ध में यूनान पर दबाव बनाकर राष्ट्रसंघ ने बालकन क्षेत्र में युद्ध के विस्तार को रोक दिया। यह राष्ट्रसंघ की सबसे बड़ी उपलब्धि थी। इसी तरह पेरू द्वारा पड़ोसी राज्य कोलम्बिया के नगर पर अधिकार को राष्ट्रसंघ ने अनुचित बताया और पुनः यह क्षेत्र कोलम्बिया को वापस प्राप्त हुआ। उपर्युक्त समस्याओं के समाधान में जनमत संग्रह एवं अंतर्राष्ट्रीय दबाव की नीति को अपनाया गया।

परन्तु अनेक महत्वपूर्ण अंतर्राष्ट्रीय मसलों पर राष्ट्रसंघ की प्रभावहीन भूमिका ने महत्वाकांक्षी राष्ट्रों को बल मिला जैसे-1931 में जापान की साम्राज्यवादी नीति का शिकार चीन बना और राष्ट्रसंघ के हस्तक्षेप के बावजूद भी चीन के प्रांत मंचूरिया से जापान ने अपने सैनिक वापस नहीं बुलाए। मंचूरिया संकट की असफलता से इटली के तानाशाह 'मुसोलिनी' की साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं को बल मिला और इस क्रम में उसने अफ्रिकी देश अबीसीनिया पर आक्रमण कर उसे अपने क्षेत्र में मिला लिया। अबीसीनिया के विरोध करने पर राष्ट्रसंघ ने इटली पर आर्थिक प्रतिबंध भी लगाए। परन्तु इसका कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इससे राष्ट्रसंघ की कमजोरी उजागर हुई । फलस्वरूप छोटे-छोटे राष्ट्रों का भी विश्वास राष्ट्रसंघ से उठने लगा। अबीसीनिया में मुसोलिनी की विजय से प्रोत्साहित होकर हिटलर ने वर्साय की संधि की अवहेलना करनी शुरू कर दी। 1938 में उसने चेकोस्लोवाकिया पर अधिकार कर लिया और 1 September 1939 को जैसे ही पोलैंड पर आक्रमण किया, द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हो गया। 1936 ई० के स्पेनिश गृहयुद्ध में हिटलर तथा मुसोलिनी के हस्तक्षेप से प्रजातंत्र के समर्थकों की पराजय हुई । इस हस्तक्षेप को राष्ट्रसंघ ने असहाय बनकर देखा। यह प्रजातंत्र के आदर्शों पर कुठाराघात था, जिससे अधिनायकवाद के नेतृत्व में युद्धोन्माद कायम हुआ। इसके अतिरिक्त यूनान-इटली संघर्ष में इंग्लैंड तथा फ्रांस जैसे शक्तिशाली राष्ट्र खुलकर इटली के समर्थन में आ गए। शक्तिशाली राष्ट्रों की विभिन्न अंतर्राष्ट्रीय मसलों पर हस्तक्षेप की नीति ने राष्ट्रसंघ की प्रासंगिकता पर ही प्रश्नचिह्न लगा दिया।

यद्यपि 1932 ई० में हुए निःशस्त्रीकरण सम्मेलन की असफलता में जर्मनी तथा फ्रांस की सैन्य प्रतिस्पर्द्धा जिम्मेवार थी परन्तु इसे सफल बनाने में राष्ट्रसंघ ने भी कोई सार्थक प्रयास

नहीं किया। इस तरह अन्य राजनैतिक एवं अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं को भी सुलझाने में राष्ट्रसंघ असफल रहा। इस असफलता ने अंततः द्वितीय विश्वयुद्ध की परिस्थितियों को जन्म दिया।

अन्य क्षेत्रों में राष्ट्रसंघ की सफलता : इन राजनीतिक असफलताओं के बावजूद राष्ट्रसंघ ने अन्य क्षेत्रों में काफी सराहनीय भूमिका निभाई। ये कार्य मुख्य रूप से जनकल्याण से संबंधित थे। युद्धबंदियों की समस्या तथा उन्हें यातनागृहों से मुक्त कराने, युद्ध के उपरांत विस्थापितों एवं शरणार्थियों के पुनर्वास के कार्यों में राष्ट्रसंघ की भूमिका अग्रणी थी। राष्ट्रसंघ ने महामारियों एवं भीषण संक्रामक रोगों को रोकने में भी काफी सफलता प्राप्त की। युद्ध से ग्रसित यूरोप के कई राष्ट्रों की आर्थिक दशा सुधारने में राष्ट्रसंघ के विभिन्न संगठनों ने सहायता की। सामाजिक समस्याओं के निराकरण, जैसे - दासप्रथा को समाप्त करने, स्त्री के क्रय-विक्रय को रोकने, अफीम के अनुचित प्रयोग को कम करने, अल्पसंख्यकों की रक्षा करने, आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में अंतर्राष्ट्रीयता के आधार पर सहयोग स्थापित करने में राष्ट्रसंघ ने अद्‌भुत सफलता प्राप्त की। राष्ट्रसंघ के तत्वावधान में स्थापित अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन ने अनेक प्रशंसनीय कार्य किये। उसने संसार के सभी मजदूरों के लिए अनेक प्रकार की सुविधाओं की व्यवस्था करवायी। उनके काम के घंटों और पारिश्रमिक को निश्चित करवाया। राष्ट्रसंघ की सबसे महत्वपूर्ण सफलता अंतर्राष्ट्रीय विधि को समुचित ढंग से नियमबद्ध करने की दिशा में योगदान देना था।

राष्ट्रसंघ की असफलता के कारण : राष्ट्रसंघ के द्वारा अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर शांति एवं परस्पर सहयोग का जो महान् प्रयास था, वह अल्पकाल में ही समाप्त हो गया। क्योंकि 1918 ई० में प्रथम विश्वयुद्ध की समाप्ति के महज् 21 वर्ष बाद ही द्वितीय विश्वयुद्ध आरंभ हो गया। इसके अनेक कारण थे-

तत्कालीन अंतर्राष्ट्रीय राजनीति में इसकी व्यावहारिक सफलता बड़े एवं शक्तिशाली राष्ट्रों के सहयोग पर निर्भर करती थी। परन्तु राष्ट्रसंघ प्रारम्भ से ही इस सहयोग से वंचित रहा। संयुक्त राज्य अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति **वुड्रो विल्सन** के अनवरत प्रयासों के फलस्वरूप राष्ट्रसंघ की स्थापना हुई थी। परन्तु बाद मेंअमेरिका स्वयं इसका सदस्य नहीं रहा। अंतर्राष्ट्रीय स्तर की इस संस्था से शक्तिशाली राष्ट्रों का अलगाव भी इसकी असफलता के कारण थे।

जैसे-प्रारम्भ में इस संस्था की सक्रिय सदस्यता से सोवियत रूस को अलग रखा गया परन्तु हिटलर की महत्वाकांक्षी कार्यों से जब यूरोपीय राष्ट्र परेशान होने लगे तो शक्ति संतुलन के लिए सोवियत रूस को राष्ट्रसंघ में शामिल किया गया। परन्तु तब तक राष्ट्रसंघ एक प्रभावहीन संस्था बन गयी थी। **1925 के लोकार्नो की संधि** के माध्यम से जर्मनी को राष्ट्रसंघ में शामिल किया गया। परन्तु उससे कभी वफादारी की उम्मीद नहीं की जा सकती थी। क्योंकि राष्ट्रसंघ उस कठोर वर्साय की संधि का एक अभिन्न अंग था, जिसको हिटलर ने मिटाने का संकल्प कर रखा था। इटली के तानाशाह शासक मुसोलिनी की फासिस्टवादी नीतियों को विश्व शांति में कतई विश्वास नहीं था। मुसोलिनी मानव-सभ्यता की प्रगति के लिए युद्ध को आवश्यक मानता था। इस परिस्थिति में केवल ब्रिटेन और फ्रांस के सहयोग पर ही राष्ट्रसंघ की क्रियाशीलता निर्भर करती थी। परन्तु उनकी इच्छा राष्ट्रसंघ की नीतियों एवं उद्देश्यों को सफल बनाना कम वरन् अपने साम्राज्यवादी एवं पूँजीवादी हितों को पूरा करना अधिक था और इन उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए इन्होंने राष्ट्रसंघ का दुरुपयोग भी किया।

शक्तिशाली राष्ट्रों की निरंकुश एवं आक्रामक नीति ने राष्ट्रसंघ को कमजोर किया। जैसे- अबीसीनिया पर इटली के आक्रमण का सभी राष्ट्रों ने विरोध किया तथा इटली पर आर्थिक प्रतिबंध की मांग की गई। परन्तु मुसोलिनी की धमकी ने फ्रांस तथा इंग्लैंड को ऐसा करने से रोका। इससे राष्ट्रसंघ की निर्बलता स्पष्ट रूप से उजागर हुई। हिटलर की अवहेलनापूर्ण नीति का राष्ट्रसंघ में कोई विरोध नहीं हुआ। संघ के सदस्यों के मध्य परस्पर असहयोग की भावना ने हिटलर की आक्रमणकारी नीति को बल प्रदान किया। वस्तुतः हिटलर अपनी प्रत्येक कदम की प्रतिक्रिया का अवलोकन करता था और इसका व्यापक प्रतिरोध न देखकर साम्राज्य विस्तार करता रहा।

1929-30 की विश्व आर्थिक मंदी ने सभी राष्ट्रों को अपने देश की आर्थिक हितों की ओर आकृष्ट किया। इससे उत्पन्न आर्थिक राष्ट्रवाद ने राष्ट्रसंघ के सिद्धान्तों 'अंतर्राष्ट्रीय शांति और परस्पर सहयोग' को अप्रासंगिक बना दिया। इसके अतिरिक्त राष्ट्रसंघ की अपनी सेना का नहीं होना तथा राष्ट्रसंघ का दोषपूर्ण संविधान, जिसके कारण उसके लगाए गए प्रतिबंध प्रभावी नहीं हो पाते थे, उसकी असफलता के कारण थे।

अपनी सफलता और असफलता के आलोक में राष्ट्रसंघ का यदि मूल्यांकन किया जाए तो भले ही वह कुछ महत्वपूर्ण राजनैतिक मामलों में असफल रहा हो, परन्तु उसने अंतर्राष्ट्रीय सहयोग और सौहार्द्र की जो नई परम्परा का सूत्रपात किया, वह वर्त्तमान अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के लिए प्रेरणा स्रोत है। इसने गुप्त कूटनीति के दुर्गुणों को दूर कर अंतर्राष्ट्रीय राजनीति को एक नया मार्ग दिखाया। आगे द्वितीय विश्व युद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना इसी से प्राप्त अनुभव और परीक्षण का परिणाम था।

संयुक्त राष्ट्रसंघ [United Nations Organization (U.N.O.)] :

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद शांति स्थापित करने की आवश्यकता प्रथम विश्वयुद्ध से अधिक महसूस की गई। यह युद्ध अधिक भयंकर और संहारक साबित हुआ, जिसमें आण्विक हथियारों का भी प्रयोग हुआ। द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के पूर्व ही मित्र राष्ट्रों ने अपनी विजय की आशा रखकर पुनः एक ऐसे अंतर्राष्ट्रीय संगठन की स्थापना करने का निश्चय किया, जो राष्ट्रसंघ की भाँति असमर्थ और त्रुटिपूर्ण न होकर पूरी तरह शक्तिशाली हो। ताकि विश्व शांति पर फिर से खतरा उत्पन्न न हो। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना इसी का परिणाम था।

- जेम्स पैलेस घोषणा- 12 June 1941
- एटलांटिक चार्टर- 14 August- 1941
- संयुक्त राष्ट्र घोषणा- 1 Jan- 1942
- मास्को घोषणा- Oct- 1943
- तेहरान घोषणा- Dec- 1943
- याल्टा सम्मेलन- Feb 1944 (U.S.S.R)
  इन घोषणाओं के माध्यम से संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना का मार्ग -प्रशस्त हुआ।

द्वितीय विश्वयुद्ध की समाप्ति के ठीक पश्चात संयुक्त राष्ट्रसंघ के स्थापनार्थ एक पोस्टर–अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग एवं समर्थन के पक्ष में

फरवरी 1945 के याल्टा सम्मेलन में चर्चिल, रूजवेल्ट एवं स्टालिन

संयुक्त राष्ट्रसंघ के स्थापना की पृष्ठभूमि और सेनफ्रांसिस्को सम्मेलन :-

1944 ई॰ में संयुक्त राज्य अमेरिका के वाशिंगटन डी॰सी॰ में स्थित 'डाम्बस्टन ओक्स' नामक स्थान पर हुई बैठक में ऐसे अंतर्राष्ट्रीय संगठन की कल्पना की गई, जिसमें राष्ट्रसंघ के बहुत से तत्व पाये जाने थे। परन्तु साथ में कुछ ऐसे विचारों का समावेश भी किया गया जिनसे राष्ट्रसंघ की त्रुटियों से सबक लिया जा सके। इसमें मित्र राष्ट्रों के सदस्य अमेरिका, ग्रेट ब्रिटेन और रूस के प्रतिनिधि एकत्रित हुए। अमेरिका के सेनफ्रांसिस्को शहर में 25 अप्रैल, 1945 में शुरू हुए सम्मेलन में इसके नए चार्टर को स्वीकार किया गया। 26 जून, 1945 को भारत सहित पचास राष्ट्रों के प्रतिनिधियों ने हस्ताक्षर किए। 24 अक्टूबर, 1945 को इसके सभी शर्त स्वीकार कर लिए गए एवं इसी तिथि को 'संयुक्त राष्ट्रसंघ' अस्तित्व में आया। इसका नामकरण अमेरिका के तत्कालीन राष्ट्रपति **फ्रैंकलिन डी0 रूजवेल्ट** द्वारा किया गया।

संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रतीक चिह्न जिसमें जैतुन की डालियों के बीच विश्व का मानचित्र है

संयुक्त राष्ट्रसंघ के लक्ष्य एवं उद्देश्य :-

चार्टरः- संयुक्त राष्ट्रसंघ के संगठन के विधान को चार्टर कहते हैं। इसमें 111 धाराएँ हैं। जिनके अनुसार संयुक्त राष्ट्र संघ का संचालन होता है।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्य उसकी चार्टर की धाराओं में उल्लिखित है जिसमें निम्नलिखित प्रमुख उद्देश्य निहित थे-

1. शांति स्थापित करना, आक्रमण को रोकना और अंतर्राष्ट्रीय विवादों का शांतिपूर्ण ढंग से निपटारा करना।

2. आत्मनिर्णय और समानता के सिद्धान्तों के आधार पर संसार के राष्ट्रों के मध्य मैत्रीपूर्ण संबंधों को और अधिक सुदृढ़ करना।

3. विभिन्न राष्ट्रों की आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याओं का समाधान करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय सहयोग प्राप्त करना एवं मानवीय अधिकारों और स्वतंत्रता के प्रति राष्ट्रों में सम्मान और प्रतिष्ठा की भावना उत्पन्न करना।

4. संयुक्त राष्ट्रसंघ को एक ऐसा केन्द्र बनाना जहाँ इन सभी उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए की जानेवाली कार्यवाही में तालमेल और सामंजस्य स्थापित किया जा सके।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के सिद्धान्त :

उपर्युक्त उद्देश्यों एवं लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए घोषणा पत्र में कुछ सिद्धान्त निर्धारित किये गए थे, जो निम्न प्रकार हैं :–

- राष्ट्रों की समानता के सिद्धान्त पर यह संस्था आधारित रहेगी।
- प्रत्येक सदस्य राष्ट्र, संयुक्त राष्ट्रसंघ के घोषणापत्र (Charter) का स्वागत करेगा और उसका उल्लंघन नहीं करेगा।
- सभी सदस्य राष्ट्र अपने झगड़ों या विवादों का निबटारा शांतिपूर्ण ढंग से करेंगे।
- संस्था के सदस्य किसी अन्य राष्ट्र की स्वतंत्रता और प्रादेशिक अखंडता को आक्रमण के द्वारा या किसी भी तरह विनष्ट नहीं करेंगे।
- घोषणा पत्र के नियमों की अवहेलना करने वाले राष्ट्र को किसी भी सदस्य राष्ट्र द्वारा सहायता नहीं की जायेगी।
- अगर कोई गैर सदस्य राष्ट्र शांति को भंग करने का प्रयास करेगा तो संस्था उसके विरुद्ध कार्यवाही करेगी।
- संयुक्त राष्ट्रसंघ किसी भी राष्ट्र के आंतरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगी।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के उपर्युक्त उद्देश्य एवं सिद्धान्तों में विश्वशांति, सुरक्षा एवं सहअस्तित्व के भाव निहित हैं। यह निश्चित रूप से 'विश्वबंधुत्व' एवं 'समानता' कायम करने में सहायक है। विश्व के अधिकांश राष्ट्रों का इसके झंडे तले आना यह सिद्ध करता है कि इसके सिद्धान्त एवं उद्देश्य आज भी उतने ही प्रासंगिक एवं विश्वसनीय हैं जितने कि इसकी स्थापना के समय थे। वर्तमान में इसके 195 सदस्य हैं। दक्षिणी सुडान इसका नवीनतम (195वाँ) सदस्य है जिसने 11 जुलाई, 2011 में इसकी सदस्यता ग्रहण की।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के अंग :

संयुक्त राष्ट्रसंघ का मुख्यालय अमेरिका के न्यूयार्क शहर में स्थित है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के 6 प्रमुख अंग है, जिनका कार्य **अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक**

एवं अन्य क्षेत्रों में योगदान करना है। ये प्रमुख अंग निम्नलिखित हैं–

1. आमसभा– यह संयुक्त राष्ट्र का सबसे प्रमुख अंग है। इसमें सभी सदस्य देशों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं तथा प्रत्येक सदस्य राष्ट्र को मत देने एवं वाद-विवाद में भाग लेने का अधिकार है। इसकी बैठक वर्ष में एक बार होती है। संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्राय: सभी महत्वपूर्ण कार्य इसी अंग के द्वारा सम्पादित होते हैं जिसके अंतर्गत राष्ट्रों को सदस्यता प्रदान करना, उनकी सदस्यता रद्द करना, महासचिव का निर्वाचन एवं अन्य आर्थिक मुद्दों पर निर्णय लिए जाते हैं।

संयुक्त राष्ट्रसंघ के 5 स्थाई सदस्य-अमेरिका, इंग्लैण्ड, फ्रांस, रूस एवं चीन हैं।

2. सुरक्षा परिषद्– राष्ट्रसंघ की यह इकाई अंतर्राष्ट्रीय शांति एवं सुरक्षा के लिए महत्वपूर्ण रूप से उत्तरदायी है। राजनैतिक विषयों में सुरक्षा परिषद् संयुक्त राष्ट्र का कार्यपालक अंग है। इसके 5 स्थायी और 10 अस्थाई सदस्य होते हैं।

3. आर्थिक और सामाजिक परिषद्– यह अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर विभिन्न आर्थिक सामाजिक, सांस्कृतिक, शैक्षिक एवं स्वास्थ्य से संबंधित मामलों पर अध्ययन करती है एवं इससे संबंधित विभिन्न सूचनाएँ सुरक्षा परिषद् के प्रार्थना पर उसे प्रदान करती है। विश्व के विभिन्न क्षेत्रों के लिए इसके अलग-अलग समूह कार्यरत हैं जैसे यूनीसेफ, यूनेस्को, मानवाधिकार आयोग, अंतर्राष्ट्रीय श्रम संगठन आदि।

4. न्यास परिषद्– संयुक्त राष्ट्र का यह अंग उन प्रदेशों में जहाँ अभी तक पूर्ण स्वायत्त शासन नहीं है, उनके निवासियों के हितों की रक्षा के लिए अंतर्राष्ट्रीय न्यास का कार्य करती है। जैसे–प्रशांत महासागर में स्थित माइक्रोनेशीया के 4 द्वीप समूह इसी संगठन के निर्देश पर संयुक्त राज्य अमेरिका के शासन में हैं। इस प्रकार इस संगठन के 4 उद्देश्य हैं– (क) अंतर्राष्ट्रीय शांति तथा सुरक्षा को बढ़ावा देना (ख) लोगों के स्वशासन तथा स्वतंत्रता के क्रमिक विकास में सहायता करना (ग) मानवीय अधिकारों एवं स्वतंत्रता के प्रति आस्था बढ़ाना (घ) सामाजिक, आर्थिक और वाणिज्य संबंधी मामलों में समानता का व्यवहार करना।

5. अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय– यह संयुक्त राष्ट्रसंघ की एक प्रमुख कानूनी संस्था है। इसकी स्थापना राष्ट्रसंघ के तत्वावधान में हुई थी, जहाँ यह अंतर्राष्ट्रीय विवादों का निर्णय करती थी। परन्तु संयुक्त राष्ट्रसंघ की स्थापना के साथ ही इसे न्याय के निमित्त सर्वोच्च अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय का रूप प्रदान किया गया। इसका मुख्यालय **हेग** (नीदरलैंड) में है।

6. सचिवालय– संयुक्त राष्ट्र के 6 प्रमुख अंगों में से सचिवालय का भी महत्वपूर्ण स्थान है। इसका मुख्य प्रशासनिक अधिकारी महासचिव है। यह राष्ट्रसंघ का मुख्यालय है जहाँ सदस्य राष्ट्रों के कर्मचारी के रूप में प्रतिनिधियों को बुलाया जाता है। संयुक्त राष्ट्रसंघ में 6 भाषाएँ मान्यता प्राप्त है यथा- **अंग्रेजी, फ्रेंच, चीनी, रूसी, अरबी** एवं **स्पेनिश**

संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रथम महासचिव ट्रिग्वेली तथा वर्तमान महासचिव एटोनिया शुटेरेश (पुर्तगाल)

संयुक्त राष्ट्रसंघ की सफलता एवं असफलताएँ :

राजनैतिक तथा गैर राजनीतिक दोनों क्षेत्रों में संयुक्त राष्ट्रसंघ की उपलब्धियाँ महान रही हैं। इन्हीं उपलब्धियों में इसकी सफलता एवं असफलता के तथ्य ढूँढ़े जा सकते हैं। संयुक्त राष्ट्रसंघ ने विश्व में अनेक युद्ध की परिस्थितियों को टालने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भले ही यह पूर्णतः सत्य न हो परन्तु इतना तो कहा ही जा सकता है कि इसकी भूमिका ने विश्व को तृतीय विश्वयुद्ध के दरवाजे तक जाने से रोक रखा है। इसने विवादों की उग्रता को कम करने एवं पारस्परिक वार्ता का मंच तैयार करने में सफल भूमिका निभाई है। इसके विभिन्न संस्थाओं ने विश्व के अविकसित, पिछड़े एवं विकासशील राष्ट्रों में **आर्थिक, सामाजिक, स्वास्थ्य** संबंधी समस्याओं को दूर करने में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। विश्व में होने वाली प्राकृतिक आपदाओं से उत्पन्न समस्याओं को दूर करने जैसे–पुनर्वास कार्य, संक्रामक बीमारियों को रोकने एवं आर्थिक क्षतिपूर्ति में संयुक्त राष्ट्रसंघ की महती भूमिका रही है।

चूँकि संयुक्त राष्ट्र के सिद्धान्त एवं उद्देश्य में **विश्वशांति** को सर्वोच्च प्राथमिकता दी गई है। इसलिए इस दिशा में संघ प्रयासरत है। इस संदर्भ में इसकी सफलताएँ उल्लेखनीय हैं।

एशिया के विभिन्न देशों के मध्य हो रहे अंतर्राष्ट्रीय तनावों को कम करने में संयुक्त राष्ट्र की सराहनीय भूमिका रही है। 1946 में संयुक्त राष्ट्र ने ईरान में अवैध रूप से रह रहे रूसी सैनिकों को हटने के लिए दबाव डाला। उत्तर एवं दक्षिण कोरिया के मध्य चल रहे युद्ध को 1953 में रोकने में संयुक्त राष्ट्रसंघ सफल रहा। 1956 में स्वेज नहर के मामले में वहाँ अंतर्राष्ट्रीय सेना को तैनात कर शांति स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। 1959 में लेबनान पर संकट आया तो संयुक्त राष्ट्र ने अपना दल भेजकर संकट को दूर करने का प्रयास किया। मध्य एशिया में फिलस्तीन–इजरायल का मुद्दा एक विकट रूप ले चुका था, जिसे संयुक्त राष्ट्रसंघ की सक्रिय भूमिका ने बहुत हद तक कम किया। साथ ही अरब राज्यों.में होने वाले तनावों को भी कम करने में यह सफल रहा। 1988 ई० में संयुक्त राष्ट्र महासचिव पेरेज द कुइयार के प्रयत्नों से ईरान–इराक के बीच 8 वर्षो से चल रहे युद्ध की समाप्ति हुई और इस क्षेत्र में शांति स्थापित हुई। 1965 के भारत–पाकिस्तान युद्ध को रोकने हेतु संयुक्त राष्ट्र ने ठोस कदम उठाये। 1971 ई० में बांग्लादेश की आजादी के प्रश्न को लेकर पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया तो सुरक्षा परिषद् ने युद्ध बंदी को आजाद कराने के दिशा में सफल प्रयास किया।

अफ्रिका महादेश में यूरोपीय औपनिवेशिक नीति के कारण उन्हें स्वतंत्रता देने में काफी विवाद एवं समस्याएँ सामने आयीं तथा वहाँ गृहयुद्ध छिड़ गया। इन समस्याओं को हल करने में संयुक्त राष्ट्रसंघ की महत्वपूर्ण भूमिका रही। वर्त्तमान समय में भी नाइजीरिया, अंगोला, सियरालिओन आदि देशों में छिड़े गृहयुद्ध को रोकने में संयुक्त राष्ट्रसंघ शांति सेना की भूमिका महत्वपूर्ण है। 1990 में ईराक द्वारा कुवैत पर अधिकार को संयुक्त राष्ट्र ने अवैध ठहराया और 1991 में कुवैत को इराकी सेना से मुक्त कराया गया। **वर्तमान में संयुक्त राष्ट्रसंघ रूस यूक्रेन युद्ध को समाप्त कराने में पूर्णतः विकल रहा है।**

संयुक्त राष्ट्रसंघ असफलताएँ :

यद्यपि संयुक्त राष्ट्रसंघ ने अपनी राजनैतिक भूमिका से विश्वशांति कायम करने में अनेक सफलताएँ हासिल की परन्तु यह बहुत सारे विवादों को सुलझाने में असफल भी रहा है। निःशस्त्रीकरण की दिशा में इसे अभी भी अपेक्षित सफलता नहीं मिल पायी है। अरब-इजरायल युद्ध (फिलिस्तीन), नामिबिया की समस्या, दक्षिण अफ्रिका की रंगभेद नीति, ईराक समस्या, कश्मीर समस्या आदि दूर करने में यह असफल सिद्ध हुआ है।

असफलता के कारण :

आर्थिक आत्मनिर्भरता का अभाव– संयुक्त राष्ट्र के आर्थिक क्रियाकलापों की पूर्ति उसके सदस्य राष्ट्रों को आर्थिक अंशदान द्वारा होती है। इस कारण संघ में जिस राष्ट्र का अधिक आर्थिक अंशदान होता है उसी का दबदबा बना रहता है। जैसे–इसका मुख्यालय अमेरिका के न्यूयार्क में अवस्थित है और इसके खर्च के आधा हिस्से की जिम्मेवारी अमेरिका की है। अतः, संयुक्त राष्ट्रसंघ के कार्यों में अमेरिकी हस्तक्षेप जग जाहिर है।

गुटबंदी– संयुक्त राष्ट्रसंघ पर विभिन्न गुटों का प्रभाव रहा है और इसके कारण अनेक मुद्दों पर इसे कार्य करने में कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। विकसित राष्ट्रों के गुट **जी-8**, सामरिक दृष्टि से शक्तिशाली गुट, **नाटो, सीटो, वारसा** आदि गुटों का प्रभाव ने संयुक्त राष्ट्रसंघ के महत्व को घटाया है। इसके राजनैतिक हस्तक्षेपों ने भी, संयुक्त राष्ट्रसंघ की असफलता को बढ़ाया है।

सुरक्षा परिषद् में क्षेत्रीय असंतुलन– सुरक्षा परिषद् में सभी महादेशों के प्रतिनिधि नहीं होने के कारण समस्याएँ खड़ी होती है। सुरक्षा परिषद् में 5 स्थायी सदस्यों में से तीन देश

यूरोप से आते हैं। वास्तव में अधिक समस्या अफ्रिका, दक्षिणी अमेरिका और एशियाई देशों की है। जिसका प्रतिनिधित्व सुरक्षा परिषद् के स्थायी सदस्य के रूप (सिर्फ चीन को छोड़कर) में नहीं है। ज्ञातव्य है कि स्थायी सदस्यों को निषेधाधिकार (Veto) प्राप्त है। जो किसी भी मुद्दे पर हस्तक्षेप का अन्तिम उपाय है जिसका शक्तिशाली राष्ट्रों द्वारा अपने हितों की पूर्ति के लिए प्रायः दुरुपयोग ही हुआ है।

स्थायी सेना का अभाव– किसी भी आक्रमणकारी राष्ट्र को रोकने के लिए सेना की जरूरत होती है। दुर्भाग्यवश संयुक्त राष्ट्रसंघ के पास अपनी सेना नहीं है। सुरक्षा परिषद् द्वारा किसी भी देश के आक्रमणकारी घोषित करने पर सदस्य राष्ट्रों द्वारा सेना दिये जाने पर ही आक्रमणकारी को रोका जाता है। कई बार ऐसा देखा गया है कि सदस्य राष्ट्र अपनी फौज देने से हिचकिचाते हैं। परन्तु भारत संयुक्त राष्ट्रसंघ के मूल्यों में पूर्ण आस्था रखते हुए अधिकाधिक बार अपने सैनिकों को संयुक्त राष्ट्र के तत्वावधान में भेजा है।

औद्योगिक देशों की महत्वाकांक्षा– साम्राज्यवाद का स्वरूप बदल रहा है। अब कोई देश सीधे आक्रमण नहीं वरन् आर्थिक दबाबों के आधार पर अपने राजनैतिक उद्देश्यों की पूर्ति करता है। इसके कारण विश्व विकसित एवं विकासशील देशों के गुटों में बँट रहा है। विश्व व्यापार संगठन में हो रहे विवाद, तेल से संबन्धित राजनीति, सेवा क्षेत्र में हो रहे विवाद (outsourcing) आदि उदाहरण हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि इन संस्थानों द्वारा विश्व में शांति के प्रयास निरर्थक नहीं रहे हैं। यद्यपि कुछ मुद्दों पर यह असफल रहा हो, जो विवेच्य बिंदु हैं, परन्तु अंतर्राष्ट्रीय तनाव को कम करने, उत्श्रृंखल राष्ट्रों पर लगाम कसने तथा गैर राजनीतिक कार्यों में यह सफल रहा है। किसी भी संगठन की सफलता-असफलता उसके सदस्यों की इच्छा शक्ति एवं दृष्टिकोण पर निर्भर करती है। अतः आवश्यकता है इसके उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों को सफल बनाने की तभी विश्व शांति के प्रयास सफल हो सकते हैं।

अभ्यास :

प्रश्नावली :

नीचे दिये गए प्रत्येक प्रश्न में 4 संकेत चिह्न क, ख, ग, घ दिये गये हैं, जिनमें एक सही या सबसे उपयुक्त है। प्रश्नों का उत्तर देने के लिए प्रश्न संख्या के सामने वह संकेत चिह्न लिखें जो सही या सबसे उपयुक्त है।

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. राष्ट्रसंघ के सचिवालय का प्रधान कर्यालय–

(क) न्यूयार्क में था (ख) पेरिस में था

(ग) जेनेवा में था (घ) बर्लिन में था

2. इसमें कौन राष्ट्रसंघ का सदस्य नहीं था?

(क) इंग्लैण्ड (ख) संयुक्त राज्य अमेरिका

(ग) फ्रांस (घ) जर्मनी

3. राष्ट्रसंघ की स्थापना का मूल उद्देश्य था?

(क) द्वितीय विश्वयुद्ध की पृष्ठभूमि तैयार करना

(ख) भविष्य में युद्ध रोकना

(ग) राष्ट्रों के बीच मतभेद उत्पन्न करना

(घ) इनमें से कुछ नहीं।

4. राष्ट्रसंघ की स्थपना किस वर्ष हुई

(क) 1945 (ख) 1925

(ग) 1920 (घ) 1895

5. निम्नलिखित में से कौन संयुक्त राष्ट्र की विशेष एजेंसी है?

(क) आर्थिक और सामाजिक परिषद् (ख) अंतर्राष्ट्रीय न्यायालय

(ग) संरक्षण परिषद् (घ) अंतर्राष्ट्रीय मजदूर संघ

6. संयुक्त राष्ट्रसंघ का मुख्यालय कहाँ अवस्थित है?

(क) जेनेवा (ख) वाशिंगटन डी० सी०

(ग) न्यूयार्क (घ) लंदन

7. संयुक्त राष्ट्रसंघ किस सम्मेलन का सफल परिणाम था?

(क) डाम्बस्टन ओक्स (ख) सैन फ्रांसिस्को

(ग) जेनेवा (घ) पेरिस

8. वर्त्तमान में संयुक्त राष्ट्रसंघ के कितने सदस्य हैं?

(क) 111 (ख) 195

(ग) 190 (घ) 290

II. अति लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. सुरक्षा परिषद् में कितने स्थायी और अस्थायी सदस्य हैं?
2. राष्ट्रसंघ का सबसे प्रमुख अंग कौन है?
3. संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना किस तिथि को हुई?
4. संयुक्त राष्ट्रसंघ के वर्त्तमान महासचिव कौन हैं?
5. संयुक्त राष्ट्रसंघ के चार्टर में कितनी धाराएँ हैं?
6. सुरक्षा परिषद् के अस्थाई सदस्यों की संख्या है–
7. संयुक्त राष्ट्रसंघ का प्रधान अधिकारी कहलाता है–

III. लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. राष्ट्रसंघ की स्थापना किस प्रकार हुई?
2. राष्ट्रसंघ निःशस्त्रीकरण के प्रश्न को सुलझाने में क्यों असफल रहा?
3. राष्ट्रसंघ किन कारणों से असफल रहा? किन्हीं 4 कारणों को बतावें।
4. संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्यों एवं सिद्धांतों को लिखें।
5. संयुक्त राष्ट्रसंघ के गैर राजनीतिक कार्य कौन-कौन से हैं?
6. संयुक्त राष्ट्रसंघ की किन्हीं 4 राजनैतिक सफलताओं का उल्लेख करें।

IV. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

1. राष्ट्रसंघ की स्थापना की परिस्थितियों का वर्णन करें।
2. राष्ट्रसंघ किन कारणों से असफल रहा? वर्णन करें।
3. संयुक्त राष्ट्रसंघ के उद्देश्यों एवं सिद्धान्तों की प्रासंगिकता बतावें।
4. संयुक्त राष्ट्रसंघ के प्रमुख अंगों की भूमिका का वर्णन करें।
5. संयुक्त राष्ट्रसंघ की महत्ता को रेखांकित करें।

इकाई-8

कृषि और खेतिहर समाज

एग्रीकल्चर (कृषि) लैटिन भाषा के दो शब्दों 'एग्रोस' तथा 'कल्चर' से बना है। एग्रोस का अर्थ है 'भूमि' और 'कल्चर' अर्थ है 'जुताई'। इस प्रकार कृषि (एग्रिकल्चर) का अर्थ 'भूमि की जुताई' से है। यद्यपि कृषि के अंतर्गत पशुपालन, वानिकी और मत्स्यन भी शामिल है।

कृषि की शुरूआत नव पाषाण काल में ही हुई थी, लेकिन सिन्धु घाटी संस्कृति विशेषकर कांस्य युग से कृषि में नियोजित विकास देखने को मिलता है। सिन्धु नदी, मिस्र की नील नदी की अपेक्षा कहीं अधिक जलोढ़ मिट्टी बहाकर लाती थी और इसे बाढ़ वाले मैदानों में छोड़ जाती थी जिससे पैदावार बढ़ जाती थी। हड़प्पा काल में राजस्थान में हल का प्रयोग का प्रमाण मिलता है। हड़प्पावासी शायद लकड़ी के हलों का प्रयोग करते थे। इस हल को आदमी खींचते थे या बैल इस बात का पता नहीं है। फसल काटने के लिए शायद पत्थर के हँसियों का प्रयोग होता था। नहरों या नालों से सिंचाई की परिपाटी नहीं थी।

सिन्धु सभ्यता के लोग गेहूँ, जौ, राई, कपास, मटर अनाज आदि पैदा करते थे। वे दो किस्म की गेहूँ और जौ उपजाते थे। वनावाली में मिला जौ उत्तम किस्म का है। इनके अलावा वे तिल और सरसों भी उपजाते थे। परन्तु हड़प्पा कालीन लोथल में रहने वाले हड़प्पाइयों की स्थिति भिन्न रही है। लगता है कि लोथल के लोग 1800 ई० पू० में ही चावल उपजाते थे जिसका अवशेष वहाँ पाया गया है। मोहनजोदड़ो और हड़प्पा में और शायद कालीबंगा में भी अनाज को बड़े-बड़े कोठारों में जमा किया जाता था। संभवत: किसानों से राजस्व के रूप में अनाज लिया जाता था। वे पारिश्रमिक चुकाने और संकट की घड़ियों में काम के लिए अनाज को कोठारों में जमा किया करते थे। यह बात हम मोसोपोटामिया के नगरों के दृष्टान्त से कह सकते हैं, जहाँ मजदूरी में जौ दिया जाता था।

सबसे पहले कपास पैदा करने का श्रेय सिन्धु घाटी सभ्यता के लोगों को है। चूँकि कपास का उत्पादन सबसे पहले सिन्धु क्षेत्र में ही हुआ। इसीलिए यूनान के लोग इसे सिन्डन (Sindon) कहने लगे जो सिन्धु शब्द से उद्‌भूत हुआ है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। भारतीय समाज एक कृषक समाज है। इसलिए कृषि भारतीय अर्थ-व्यवस्था की एक महत्वपूर्ण कड़ी है। लगभग दो तिहाई जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। जहाँ विश्व की 11% भूमि कृषि योग्य है, वहीं भारत की कुल भूमि का 51% भाग कृषि योग्य है। 'कृषि' भारत के कुल राष्ट्रीय आय में लगभग 35% योगदान करता है। भारत के पास विशाल स्थल क्षेत्र, उपजाऊ भूमि का उच्च प्रतिशत है। परन्तु कृषि का एक दुर्भाग्यपूर्ण पहलू यह है कि गुणवत्ता एवं मात्रा दोनों स्तर पर यह प्रत्येक वर्ष अनिश्चित रहता है। कृषक अंतिम समय तक अपने फसल के उत्पादन के लिए निश्चिंत नहीं रहते हैं।

भारत में कृषि जीवन की रीढ़ है। कृषि पर अत्यधिक जनसंख्या का बोझ, आधुनिक तकनीकी की जानकारी का अभाव, सिंचाई के साधनों की कमी आदि के कारण आजादी के पहले एवं आजाद्दी के तुरन्त बाद श्रम की तुलना में उत्पादन काफी कम था। लेकिन आजादी के बाद भारत सरकार के प्रयास से उत्पादन में काफी बढ़ोत्तरी हुई है।

बिहार एक कृषि प्रधान राज्य है। जिसकी 80% आबादी कृषि पर ही निर्भर है। कृषि ही राज्य के लोगों की जीविका का मुख्य आधार है। इस राज्य की लगभग 70% भूमि कृषि योग्य है। इनमें से 60% शुद्ध बोये गये क्षेत्र हैं। वास्तव में कृषि उनकी जीवन पद्धति बन गयी है। बिहार में कृषि की महत्ता के अनेक कारण हैं। इसका अधिकांश मैदानी भाग कृषि योग्य है तथा सदियों से यह क्षेत्र कृषि से संबंधित रहा है। कृषि का वाणिज्यीकरण, औद्योगीकरण और आधुनिक तकनीक से परिचित न होना इसका दुर्भाग्यपूर्ण पहलू है। अब भी बिहार में कृषि अधिकांशतः पुराने ही तरीके से हो रही है।

कृषि पर जनसंख्या के निरंतर बढ़ते हुए बोझ, अनुपस्थित भू-स्वामित्व, सिंचाई की कमी, छोटे और बिखरे खेत, अपर्याप्त रासायनिक खाद के प्रयोग, खेती के पुराने ढंग और उत्तम बीज की कमी के कारण यहाँ प्रति हेक्टेयर उत्पादन कम है और खेती पिछड़ी अवस्था में है। मानसूनी वर्षा पर निर्भरता के कारण यहाँ की कृषि को "मानसून के साथ जुआ" कहा गया है। कृषि-विपणन की दोषपूर्ण व्यवस्था के कारण किसानों को फसलों की उचित कीमत नहीं मिल पाती है। इन्हीं कारणों से बिहार के किसानों की दशा दयनीय है और वे अपने खेतों को छोड़कर दूसरे प्रांतों में आजीविका के लिए शरण लेने को बाध्य हैं। बिहार की कृषि गहन निर्वाहक प्रकार की है, जिसके अन्तर्गत वर्ष में चार फसलें बोयी और काटी जाती है। जैसे-

1. भदई फसलें : ये फसलें मई-जून में बोयी जाती है और अगस्त-सितम्बर में काट ली जाती है। मक्का, ज्वार, बाजरा, जूट, उड़द, सनई, मड़ुआ इत्यादि इस मौसम की मुख्य फसले हैं।

2. अगहनी फसलें : इनकी बुआई जुलाई–अगस्त में होती है और नवम्बर–दिसम्बर में ये तैयार हो जाती है। धान, कुलथी, तिल, आलू, तेलहन, सब्जी, मकई, कपास, गन्ना, पटसन इत्यादि इसकी मुख्य फसलें हैं।

3. रबी फसलें : ये बसंत ऋतु की फसल है, जिनकी बुआई अक्टूबर–नवम्बर में होती है तथा ये फसलें मार्च–अप्रैल तक तैयार हो जाती हैं। इन फसलों के उत्पादन में सिंचाई की कम आवश्यकता पड़ती है। गेहूँ सर्वप्रमुख रबी फसल है। गेहूँ के अतिरिक्त जौ, चना, मटर, सरसों, मसूर, खेसारी, अरहर इत्यादि की फसलें भी बड़ी मात्रा में उपजाई जाती है।

4. गरमा फसलें : ये ग्रीष्मकालीन फसलें हैं, जिनकी खेती उन क्षेत्रों में होती है जहाँ नियमित सिंचाई की व्यवस्था है। इसकी बुआई मार्च–अप्रैल में होती है और कटाई जून के महीने में होती है। ग्रीष्मकालीन धान, मकई, मूँग, चना, आम, केला, तरबूज, ककरी, सब्जियाँ एवं प्याज इस मौसम की मुख्य फसलें हैं।

बिहार में फसलों की विविधता है। फसलों को उनकी प्रकृति के आधार पर निम्नलिखित वर्गों में बाँटा जाता है–

1. खाद्य फसलें (Food crops) : धान, गेहूँ, मक्का, ज्वार–बाजरा, चना, जौ, दलहन, तेलहन इत्यादि।

2. व्यावसायिक या नकदी फसलें (Commercial or cash crops) : इसके अन्तर्गत गन्ना, पटसन, कपास, तम्बाकू, आलू, तेलहन तथा दलहन, लाल मिर्च, मसाले इत्यादि आते हैं।

3. पेय फसलें (Beverage Crops) : इसके अन्तर्गत चाय आती है, जिसकी खेती किशनगंज में की जाने लगी है।

4. रेशेदार फसलें- (Fibrous crops) : कपास, जूट, रेशम इत्यादि।

5. फल (Fruit crops) : आम, केला, लीची, अमरूद इत्यादि।

6. मसालें (Spices) : लालमिर्च, लहसुन, हल्दी, धनिया, मेथी इत्यादि।

चावल या धान (Rice or Paddy) : चावल बिहार की सर्व प्रमुख फसल है।

जलवायु : धान उष्णार्द्र जलवायु की फसल है।

तापमान : 20°c से 37°c

मिट्टी : दोमट (केवाल या चीका)

2021-2022 के आँकड़ों के अनुसार धान के अन्तर्गत सर्वाधिक भूमि रोहतास जिला में है।

गेहूँ (Wheat) : गेहूँ बिहार का दूसरा प्रमुख खाद्यान्न है।

जलवायु : शीतोष्ण कटिबंधीय

तापमान : 10°c से 15°c (बोते समय)

20°c से 30°c (पकते समय)

वर्षा : 50 सेमी से 75 सेमी तक

मिट्टी : हल्की दोमट मिट्टी

क्षेत्र : रोहतास, पूर्वी चम्पारण, सिवान

मकई (Maize) : मकई या मक्का बिहार के खाद्यान्नों में चावल और गेहूँ के बाद तीसरे स्थान पर है।

जलवायु : गर्म एवं आर्द्र

तापमान : 25°c से 30°c तक

वर्षा : 50 सेमी से 100 सेमी तक

मिट्टी : नाइट्रोजन युक्त गहरी दोमट मिट्टी

क्षेत्र : सारण,सिवान, गोपालगंज, मुजफ्फरपुर, वैशाली, पूर्वी चम्पारण, प० चम्पारण, समस्तीपुर, बेगुसराय, खगड़िया, सहरसा, मधेपुरा, पूर्णिया, कटिहार इत्यादि क्षेत्रों में होता है।

विभिन्न प्रकार की खेती का इतिहास

भारत की लगभग 70% जनसंख्या कृषि पर निर्भर है। अर्थात् भारत का समाज खेतिहर समाज है। जब कृषि की जानकारी हुई तो लोगों के पास साधन की कमी थी। क्योंकि कृषि एक संयोग मात्र है।

सभ्यता के शुरूआत में जहाँ जंगल अधिक था वहाँ लोगों ने जंगल को काटकर खेती करना प्रारम्भ किया। आज भी पहाड़ी क्षेत्रों में बहुत से आदिवासी समाज में झूम खेती

(Jhoom Cultivation) प्रचलित है। क्योंकि आदिवासी समाज पृथ्वी को अपनी माता समझते हैं और उसपर हल नहीं चलाना चाहते हैं। अत: वे वर्षा से पहले जंगल में आग लगा देते थे और उसके राख पर बीज छिड़क देते थे। वर्षा होने पर उस बीज से पौधे निकल आते थे। इस प्रकार अगले वर्ष में नीचे की तरफ आग लगा कर खेती करते थे। वैसे इस खेती से पर्यावरण पर असर पड़ता है।

विभिन्न प्रकार की खेतियों का इतिहास

- झूम खेती
- पारम्परिक खेती
- गहन खेती
- फसल चक्र मिश्रित खेती
- रोपण या बागानी खेती

पारम्परिक खेती : इसके तहत, कृषक पारम्परिक खेती करते थे। फसल उत्पादन से ही कुछ बीज वे अगले फसल के लिए रख देते थे। सिंचाई के लिए वर्षा पर निर्भर रहते थे। भारत में वर्षा मानसून से होती है जो अनिश्चित रहती है। कभी अतिवृष्टि तो कभी अनावृष्टि। कृषि के अधिकांश कार्य जानवरों के द्वारा किया जाता था। इस प्रकार पारम्परिक कृषि से उत्पादन अधिक नहीं होता था। एक ही बीज को बराबर लगाने से उसकी गुणवत्ता समाप्त हो जाती थी। पारम्परिक खेती में काफी समय लगता था तथा मिट्टी की उर्वरा शक्ति: क्रमश: कम होती जाती थी। आज भी इस तरह की खेती प्रचलित है।

आजादी से पूर्व ब्रिटिश सरकार की नीति, भू-व्यवस्था की गड़बड़ी आदि के कारण उत्पादन काफी कम होता गया। नील आदि की खेती की बाध्यता के कारण जमीन बंजर होती गई जिससे बराबर अकाल पड़ने लगा। परन्तु आजादी के बाद सरकार की भू-व्यवस्था में परिवर्तन, सिंचाई के साधनों आदि में विकास से कृषि उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई।

1960 के दशक में हरित-क्रांति के कारण खाद्यान्न उत्पादन में आशातीत बढ़ोत्तरी हुई। यहाँ से कृषि में उच्च तकनीकी एवं वैज्ञानिक पद्धति का प्रवेश होता है। **पादप-संकरण द्वारा उच्च प्रकार के बीजों के किस्मों का विकास किया गया।** उर्वरकों, कीटनाशकों, खरपतवार नाशकों के प्रयोग एवं बहुद्येशीय परियोजनाओं के द्वारा सिंचाई में विकास तथा आधुनिक यंत्रों द्वारा कृषि कार्य के कारण कृषि एक व्यवसाय के रूप में विकसित हुआ।

गहन खेती : जिन क्षेत्रों में सिंचाई संभव हुई है, उन क्षेत्रों में किसान उर्वरकों और कीटनाशकों का बड़े पैमाने पर उपयोग करने लगे हैं। कृषि की विभिन्न प्रक्रियाओं को पूरा करने के लिए मशीनों के प्रयोग द्वारा कृषि का यंत्रीकरण हो गया है। इससे प्रति हेक्टेयर उपज में कृषि का विकास हुआ है। गहन खेती का तात्पर्य है, एक ही खेत में अधिक फसल लगाना।

फसल चक्र : बराबर एक ही प्रकार के फसल लगाने से खेत की उर्वरा शक्ति क्षीण होने लगती है। अतः इसके लिए दो खाद्यान्न फसलों के बीच एक दलहनी कूल के पौधों को लगाया जाता है। जिसे फसल चक्र कहते हैं। दलहनी कूल के पौधों की जड़ की गाँठ में नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु होते हैं, जो वातावरण के नाइट्रोजन को स्थिरीकृत कर भूमि की उर्वरा शक्ति बढ़ाते हैं। आजकल विभिन्न प्रकार के उर्वरक खेत में डाल कर भूमि की शक्ति बढ़ायी जाती है।

मिश्रित खेती : एक ही खेत में समान समय में दो या तीन फसल लगाने को मिश्रित खेती कहते हैं। इससे एक ही समय में अधिक एवं विभिन्न प्रकार के फसलों की प्राप्ति होती है।

रोपण या बागानी खेती : रोपण कृषि एक विशेष प्रकार की झाड़ी कृषि अथवा वृक्ष कृषि है। इसे 19 वीं शताब्दी में अंग्रेजों ने प्रारंभ किया था। यह एकल फसल कृषि है। इसमें रबर, चाय, कहवा, कोको, मसाले, नारियल और फलों की फसलें जैसे- सेब, अंगूर, संतरा, आदि उगाई जाती हैं। इस प्रकार की खेती में अधिक पूँजी की आवश्यकता होती है। कई रोपण कृषि क्षेत्रों जैसे चाय, कहवा और रबर की बागानों या उनके निकट ही उन्हें संसाधित करने की फैक्ट्री लगाई जाती है। इस प्रकार की कृषि उत्तर-पूर्वी भारत के पर्वतीय क्षेत्रों, पश्चिम बंगाल के उप हिमालयी क्षेत्रों तथा प्रायद्वीपीय भारत की नीलगिरी, अन्नामलाई व इलायची की पहाड़ियों में की जाती है।

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में इसकी जरूरत :

ग्रामीण अर्थव्यवस्था में विभिन्न प्रकार की खेती की काफी आवश्यकता है। क्योंकि ग्रामीण जनसंख्या का अधिकांश भाग कृषि पर ही निर्भर रहता है। जनसंख्या जिस तीव्र गति से बढ़ रही है एवं अधिक आय के लिए कृषकों को आधुनिक ढंग से विभिन्न प्रकार की खेती करने की आवश्यकता है। कृषि के आधुनिकीकरण से मृदा की उर्वरा शक्ति तो पुनः प्राप्त हो ही जाती है साथ-साथ अत्यधिक उत्पादन से अर्थव्यवस्था भी सुदृढ़ होती है। नकदी फसल करने से उद्योग में बढ़ोत्तरी के साथ-साथ कृषकों को अच्छी आमदनी भी होती है।
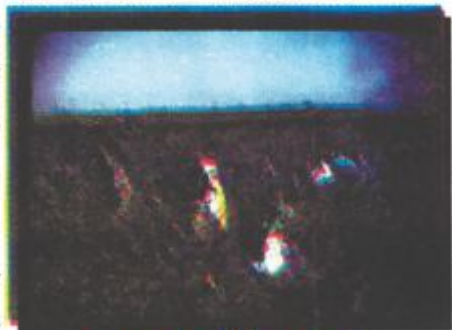
कपास की खेती का वृश्य

वर्तमान समय में ग्रामीण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन

वर्तमान समय में ग्रामीण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन आया है। आधुनिक तकनीक एवं जागरूकता के ग्रामीण कृषक अपने कृषि कार्य में परिवर्तन कर रहे हैं। आधुनिक कृषि के कारण

ग्रामीण कृषक अब इस प्रकार का फसल लगा रहे हैं जिससे अधिक आमदनी प्राप्त हो । सरकार भी वैसे फसल लगाने के लिए कृषक को प्रोत्साहन दे रही है। कृषकों के आर्थिक लाभ के लिए सरकार ऋण की मुहैया करवाती है एवं फसल बीमा के माध्यम से क्षति होने पर उसकी पूर्ति करती है। इस प्रकार के उत्पादन से उद्योग धंधे में सहायता मिलती है एवं लोगों को रोजगार भी प्राप्त होता है।

बिहार में होनेवाली प्रमुख व्यावसायिक फसलें :

केला : बिहार के हाजीपुर एवं नवगछिया का इलाका केला की खेती के लिए उपयुक्त है। यहाँ की मिट्टी एवं जलवायु केला उत्पादन के लिए उपयुक्त है। इस प्रकार, इस इलाके में केला उत्पादन एक व्यवसाय का रूप ले रहा है। फलतः ग्रामीण अर्थव्यवस्था काफी सुदृढ़ हो गई है।
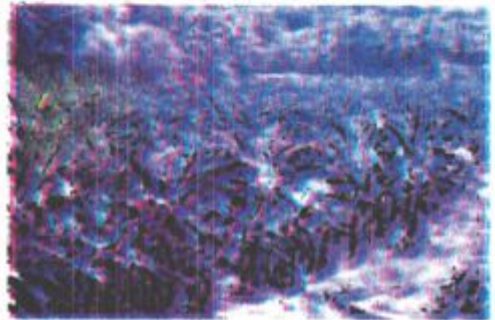
लीची : मुजफ्फरपुर का इलाका शाही लीची के लिए लोकप्रिय है। यहाँ के किसान बड़े पैमाने पर लीची के बागान लगाकर अपनी आदमी बढ़ा रहे हैं। शाही लीची का अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में माँग है। लीची का खाद्य प्रसंस्करण उद्योग में भी काफी उपयोग है।

गन्ना : गन्ना की खेती के लिए बिहार पूर्व से मशहूर है। बिहार में पूर्णिया, सहरसा, पश्चिमी चम्पारण आदि का इलाके में गन्ना की खेती बड़े पैमाने पर होती है। गन्ना एक उद्योग आधारित फसल है। इससे चीनी, गुड़ आदि प्राप्त होते हैं। इस प्रकार गन्ना की खेती से बड़े पैमाने पर आमदनी होती है। इसके अलावे ग्रामीण कृषक गुड़ आदि के कुटीर उद्योग लगाकर अपनी आमदनी बढ़ा सकते हैं।
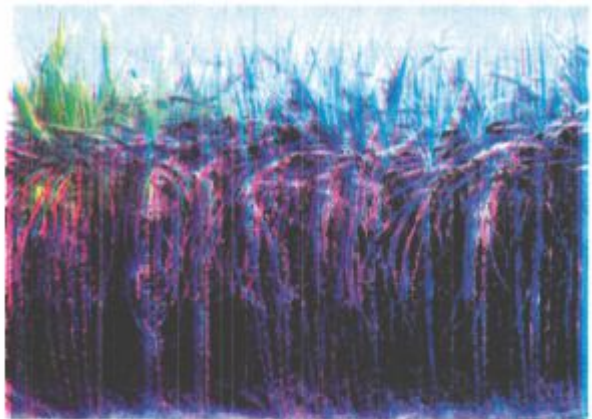
कृषि का भारतीय अर्थव्यवस्था में काफी बड़ा योगदान है। फिर भी कृषकों की स्थिति उतनी अच्छी नहीं है। बहुत जगह कृषकों को आत्महत्या तक करनी पड़ती है। अतः सरकार को इस ओर ध्यान आकृष्ट करना होगा। कृषि को उद्योग का दर्जा देकर कृषकों की स्थिति में सुधार लाया जा सकता है। कृषि कार्य को सम्मान देने के लिए आने वाली पीढ़ी को कृषि के प्रति लगाव पैदा करना होगा। उनके शैक्षणिक पाठ्यक्रम में कृषि से संबंधित अध्याय जोड़ने होंगे। कृषि उत्पादन में बढ़ोत्तरी के लिए तकनीकी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण को बढ़ावा देने की जरूरत है।

कृषि सामाजिक परिर्वतन का माध्यम हो सकता है। सामाजिक परिर्वतन से कृषि की पैदावार अधिक होगी। कृषि के अधिशेष उत्पादन एवं उद्योग आधारित कच्चे माल का अत्यधिक उत्पादन से कृषकों की अर्थव्यवस्था सुदृढ़ होगी। अर्थव्यवस्था अच्छी होने से उनके रहन-सहन का स्तर बढ़ेगा, उच्च शिक्षा की तरफ लोग मुखातिब होंगे। आमदनी बढ़ने से यंत्रीकृत कृषि शुरू होगी। इस प्रकार हमारा ग्रामीण समाज सुखी, समृद्ध एवं खुशहाल बनेगा।

कृषि में वैज्ञानिक दृष्टिकोण

कृषि में वैज्ञानिक दृष्टिकोण कृषकों के लिए काफी लाभदायक होगा। पारंपरिक खेती से किसानों की उपज अच्छी नहीं होती थी। जहाँ एक ही बीज का बार-बार प्रयोग करने से बीज की गुणवत्ता क्षीण हो जाती थी, वहीं एक ही प्रकार के खाद्यान्न लगाने से मृदा की उर्वरा शक्ति भी क्षीण पड़ जाती थी। सिंचाई के लिए वर्षा निर्भरता से या तो अनावृष्टि के कारण फसल सूख जाता था या अतिवृष्टि के कारण फसल नष्ट हो जाते थे। लेकिन वैज्ञानिक पद्धति के आने से उत्पादन में अत्यधिक बढ़ोत्तरी हुई। पादप-संस्करण के द्वारा कम वांछित गुण वाले पौधा काफी अधिक वांछित गुण वाले पौधों के साथ परागण करवा कर उन्नत किस्म का बीज प्राप्त किया जाता है। इस बीज से कम समय में अच्छी फसल प्राप्त होती है। उर्वरक का उत्पादन होने से खेतों की उर्वरा शक्ति पुनः प्राप्त हो जाती है। कीटनाशी, खरपतवारनाशी आदि का छिड़काव करके फसल को नष्ट होने से बचाया जा सकता है।

सिंचाई के तरह-तरह के साधन होने से पौधों में नमी हमेशा बनी रहती है। आधुनिक यंत्रों के कारण समय पर कृषि कार्य संभव हो पाता है एवं समय की बचत होती है। फसल चक्र, बहुफसली कृषि, मिश्रित खेती आदि के द्वारा कृषि में आशातीत वृद्धि हुई। इसी कारण 1960 के दशक में हरित क्रान्ति आयी। इस प्रकार कृषि में वैज्ञानिक दृष्टिकोण कृषि के लिए काफी लाभदायक है।

अभ्यास

I. वस्तुनिष्ठ प्रश्न :

1. दलहन फसल वाले पौधे की जड़ की गाँठ में पाया जाता है।
   (क) नाइट्रोजन स्थिरीकरण जीवाणु (ख) पोटाशियम स्थिरीकरण जीवाणु
   (ग) फॉस्फेटी स्थिरीकरण जीवाणु (घ) कोई नहीं।
2. शाही लीची बिहार में मुख्यत: होता है।
   (क) हाजीपुर (ख) समस्तीपुर
   (ग) मुजफ्फरपुर (घ) सिवान
3. रबी फसल बोया जाता है।
   (क) जून-जुलाई (ख) मार्च-अप्रैल
   (ग) नवम्बर (घ) सितम्बर-अक्टूबर
4. केला बिहार में मुख्यत: होता है।
   (क) समस्तीपुर (ख) हाजीपुर
   (ग) सहरसा . (घ) मुजफ्फरपुर
5. बिहार के किस जिले में चावल का सबसे ज्यादा उत्पादन होता है।
   (क) सिवान (ख) रोहतास
   (ग) सीतामढ़ी (घ) हाजीपुर
6. गरमा फसल किस ऋतु में होता है।
   (क) ग्रीष्म ऋतु (ख) शरद ऋतु
   (ग) वर्षा ऋतु (घ) वसंत ऋतु
7. रेशेदार फसल को चुनें-
   (क) आम (ख) लीची
   (ग) धान (घ) कपास
8. अगहनी फसल को चुनें-
   (क) चावल (ख) जूट
   (ग) मूँग (घ)गेहूँ

II. उपयुक्त शब्दों द्वारा रिक्त स्थानों की पूर्ति करें :

1. कपास एक .... फसल है।
2. मक्का .... फसल है।

3. भारत एक .... प्रधान देश है।
4. भारत की .... तिहाई जनसंख्या कृषि पर निर्भर है।
5. एग्रिकल्चर लैटिन भाषा के दो शब्दों .... तथा .... से बना है।
6. चावल सर्वाधिक .... जिला में उत्पादन होता है।
7. बिहार की कृषि गहन निर्वाहक प्रकार की है, जिसके अन्तर्गत वर्ष में .... फसलें बोयी या काटी जाती है।
8. चावल के लिए .... जलवायु की आवश्यकता है।
9. गेहूँ के लिए .... मिट्टी चाहिए।
10. मकई के लिए .... जलवायु की आवश्यकता है।

III. लघु उत्तरीय प्रश्नः

1. भारत में मुख्यतः कितने प्रकार की कृषि होती है?
2. रबी फसल और खरीफ फसल में क्या अन्तर है?
3. पादप-संकरण क्या है ?
4. मिश्रित खेती क्या है?
5. हरित क्रांति से आप क्या समझते हैं?
6. गहन खेती से आप क्या समझते हैं?
7. झूम खेती से आप क्या समझते हैं?
8. फसल चक्र के बारे में लिखें।
9. रोपण या बागानी खेती से आप क्या समझते हैं?
10. वर्तमान समय में ग्रामीण अर्थव्यवस्था में परिवर्तन के उपाय बतावें।

IV. दीर्घ उत्तरीय प्रश्न :

1. भारत एक कृषि प्रधान देश है, कैसे?
2. कृषि में वैज्ञानिक दृष्टिकोण से कृषि के लिए लाभदायक है, कैसे?
3. बिहार की कृषि "मानसून के साथ जुआ" कहा जाता है, कैसे?
4. कृषि सामाजिक परिवतन का माध्यम हो सकता है, कैसे?
5. कृषि में वैज्ञानिक दृष्टिकोण क्या है? समझावें।